से० रा० यात्री

ग्रन्थ अकादमी, नयी दिल्ली-२

टूटते
दायरे

१

आखें खुली तो मैंने पाया कि चारों तरफ़ गहरी धुंध फैल रही है। खिड़की के काचो पर कोहरे की घनी परतें जमी हुई थी और बाहर का कुछ भी दिखाई नही पड़ रहा था। सहसा मेरी नजर कुर्सी की पीठ पर पड़े 'रेन कोट' पर चली गयी और पिछली रात की सारी स्थितियां मेरी स्मृति में कौंध उठी।

भयकर बरसात मे जब मैंने चलने का हठ ही ठान लिया था तो मीनू ने अपनी बडी-बडी पानीदार आखो मे गहरा आत्मीय अनुरोध भरकर मुझे किसी भी तरह रोक लेने की कोशिश की थी। गहराती रात थी, और उस अकेले कमरे में मीनू और मेरे अलावा कोई भी नही था। मुझे मीनू के पास और अधिक देर तक ठहरने का साहस नही हो पा रहा था। मुझे डर था कि मेरी भीतरी दुर्बलता और पुरुपजनित स्वभाव कही उसके सामने खुलकर प्रकट न हो जाए।

मैं एकाएक उठकर खड़ा हो गया था तो मीनू का चेहरा उदास हो आया था। वह अपनी कुर्सी से उठकर अन्दर चली गयी थी। जब वह कुछ देर बाद लौटी तो उसके हाथ में बरसाती और एक टॉर्च थी। वह अवरुद्ध कण्ठ से कहने लगी थी, "आपकी यह ज़िद अच्छी नही है! ऐसी मूसला-धार बारिश में भी कोई अपने घर से किसी को जाने देता है?...

मीनू को अन्यमनस्क देखकर मैंने गम्भीरता को एक रतफ झटककर कहा था, "तुम्हारे कथन की व्याख्या ज़रा साफ होनी चाहिए मीनू! मेरा मतलब है, यह 'कोई और किसी' की परिभापा मेरी समझ मे नही आ रही है। इसमे इतना बेगानापन ध्वनित होता है कि अब तो मेरा यहां ठहरने का कोई चास ही नही बनता!"

"बस, आप अपनी फिलॉसफी मत झाडिये, जाना है तो चले ही

जाइये। मुझे दोषी तो मत ठहराइये !"

मैंने ठहाका लगाकर कहा था, "आ गयी न रास्ते पर ! मैं बताता हूं तुम्हें, *खुलासा करके—कुछ लोग तो अपने घरों में एक-दो छाते-बरसाती* और टॉर्च फालतू रखते हैं, मानो कोई आदमी बरसात में उठकर जाने का नाम न ले और जाने की जल्दी भी दिखाए, तो गृहस्वामी या स्वामिनी यही कहकर पीछा छुड़ाते हैं, 'हां बरसात का इरादा तो कुछ नेक नजर नहीं आता। अगर बहुत जरूरी काम हो तो आप हमारा छाता ले जाइये।' तो मीनूजी, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि समझदार लोग एक-दो छाते और बरसाती अपने घरों में फालतू रखते हैं, जिससे कि आड़े वक्त बरसात में हुजरते दाग की तरह जमकर बैठ जाने वाले सिरखाऊ मेहमानों को भल-मन्सी से टरकाया जा सके। बेचारा मेहमान ऐसी दशा में क्या करेगा—'थैंक्यू' कहकर छाता लेगा और ड्योढ़ी के बाहर हो जाएगा।" मैंने अपनी बात कहकर मीनू से पूछा, "है कि नहीं यह रियलटी ?"

मीनू के चेहरे की उदासी सहसा हंसी में बदल गयी और वह हंसी के बीच ही बोली थी, "बहुत ही दुष्ट स्वभाव है आपका ! रुकने की मिन्नतें की जा रही हैं तो जनाब के नखरों का कोई अन्त नहीं है। अब बरसाती हाथ में लाकर थमा दी तो जाने को भी तैयार नहीं हैं। अजीब हैं आप भी, उल्टे-सीधे, कैसे भी नहीं पकड़ा जा सकता आपको !"

और मुझे अब भी आलस से बिस्तर पर पड़े हुए, मीनू का वह रोकने का आग्रह और रेनकोट थमाते स्पर्श की सिहरनभरी छुअन अपने पूरे बदन में कहीं ठहरी हुई मालूम होती थी। एक रोमांचक उत्ताप उसने मेरे अंगों में दहका दिया था।

मीनू के परिवार से मेरे काफी पुराने और घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उसका भाई राजेश आठवीं जमात से मेरे साथ पढ़ा था। तब मैं गाव-देहात से कस्बे में रोज पैदल पढ़ने आता था, और सरेशाम गाव लौट जाता था। राजेश के साथ मैं इण्टर तक *विज्ञान का छात्र रहा, और बाद में* मैंने कला तथा राजेश ने विज्ञान के विषय लिये। राजेश बी० एस-सी० करके 'एयर फोर्स' में चला गया। और मैं···

इण्टरमीडिएट करने के बाद गांव से हर रोज पैदल आना-जाना मेरे

लिए सम्भव नही रहा, तो मैंने कस्बे में ही एक तग-सी कोठरी किराये पर ले ली और एक-दो ट्यूशन भी पकड़ लिये।

मैं मित्रता-जैसे भावबोध से अभी अपरिचित ही था कि एक घटना घट गयी, और मेरा राजेश के घर मे प्रवेश हो गया। मेरी इतिहास की पुस्तक गुम हो गयी थी, घर की आर्थिक स्थिति ऐसी भी नही कि मैं सुविधा-पूर्वक दूसरी पाठ्य-पुस्तक खरीद लेता। किसी तरह बिना किताब के ही काम चलाता रहा—घरवालों से भी पुस्तक खो जाने की बात नहीं कही। अपनी उसी किताब को एक दिन मैंने राजेश के पास देख लिया। पुस्तक के पहले पन्ने पर ही मेरा नाम लिखा हुआ था। झपट्टा मारकर मैंने राजेश से किताब छीन ली। राजेश ने बदले मे मेरी गर्दन दबोच ली। हम दोनो के बीच क्लासरूम मे ही महाभारत ठन गया। मास्टर साहब ने हम दोनो को जूझते देखा तो गुस्से मे उबलते आये, दोनों को दो-दो झापड़ लगाकर अपनी मेज के पास पकडकर ले गये और दोनो को मुर्गा बना दिया। जब हम मुर्गे की शक्ल मे स्थिर नही रह पाये तो आगे-पीछे लुढक गये।

इतिहास के घंटे के बाद अध्यापक महोदय ने हम दोनों की शिकायतें सुनी और फैसला सुना दिया, "अब तुम दोनों हिस्ट्री के घंटे मे साथ-साथ बैठा करो!"

वही दिन था कि राजेश और मैं अनजाने मे एक-दूसरे से जुड़ गये। हिस्ट्री की क्लास के अलावा भी हम दोनों हर घंटे में साथ-साथ बैठने लगे, और स्कूल के बाहर भी साथ-साथ दिखलाई पड़ने लगे। राजेश कभी-कभी मुझे अपने घर भी ले जाने लगा।

उन दिनो मेरा अजब हुलिया हुआ करता था। घुटनों से ऊपर तक की नीली हाफ पैंट, घर मे ही मां के हाथ की सिली गबरून की कमीज और नगे पांव। मेरे पैरों की हालत यह होती थी कि टखनों से ऊपर तक धूल की मोटी तहें जमी रहती थी। पावों के पंजे लम्बे, बेडौल कुल्हाड़े-जैसे नजर आते थे और जाड़ों मे पैर फट जाते थे, जिनसे खून भी रिसने लगता था। मैं लम्बा ही लम्बा, ताड़ के पेड़-जैसा दिखलाई पड़ता था। मां आखों मे इतना गहरा काजल भर देती थी कि चेहरे पर भी उसकी लकीरें उभर आती थी।

राजेश के पिता स्टेट बैंक के मैनेजर थे और गाव में भी उनकी अच्छी-खासी जमीदारी थी। उनके पास रहने के लिए कस्बे मे एक आलीशान कोठी थी, जिसके बाहर दूर तक फैला मखमली घास का लॉन था। माली हर मौसम में कुछ-न-कुछ नये फूल रोपता रहता था। राजेश के पिता के पास एक फोर्ड गाड़ी थी। राजेश के कहने पर गाड़ी का ड्राइवर कभी-कभी मुझे भी गाव से बाहर की सड़क पर छोड देता था। राजेश की बूढ़ी दादी मुझे 'वागडदास' कहती थी। सारा परिवार मुझे अजीब कौतुक से देखता था। उस घर मे मुझे सबसे अधिक प्यार राजेश की दादी ही करती थी। धीरे-धीरे उस स्नेहशीला बूढ़ी ने मुझसे पूछताछ करके मेरे घर-परिवार के बारे मे सबकुछ जान लिया था। कभी-कभार जाड़ों की शाम मैं राजेश के घर जाकर उसके साथ खेलने मे मशगूल हो जाता था, तो सूरज डूब जाने के बाद राजेश की दादी मुझे गाव नही जाने देती थी। मैं खुद भी गांव लौटने से कतरा जाता था।

दसवीं कक्षा तक पहुचते-पहुंचते तो यह हालत हो गयी कि राजेश की दादी ने, मुझ पर खास मेहरबानी करके, मेरे लिए एक कुर्ता-पायजामा भी सिलवा दिया, मेरे पैर का नाप लेकर चप्पलें भी मंगवा दी। उस घर मे *अनजाने ही मैं परिवार का सदस्य माना जाने लगा।*

राजेश अपने पिता का अकेला पुत्र था। उससे कोई चारेक साल छोटी उसकी बहन मीना थी, जिसे प्यार में सब लोग मीनू कहकर पुकारते थे। जब मेरा राजेश के घर जाना शुरू हुआ था तो वह फ्रॉक और चड्ढी पहना करती थी। मीना मुझे पिंजरापोल से लाया गया कोई अजीब प्राणी समझती थी। दसवी कक्षा मे उसने मेरे साथ जो विचित्र मजाक किया था, उसे मैं पूरी जिन्दगी नही भूल सकता। अपना 'आइडेन्टिटी कार्ड' खो जाने के भय से मैं राजेश के पास ही छोड जाया करता था। मीनू ने एक दिन क्या किया कि मेरे कार्ड में लगे फोटो पर, कही से बन्दर की तस्वीर काटकर चिपका दी। उसने इस कौशल से तस्वीर चिपकायी कि मेरा धड तो सही-सलामत रहा, चेहरा बन्दर का हो गया। मीनू ने यह हरकत करके परिचय-पत्र यथास्थान राजेश की आलमारी में रख दिया। मैं और राजेश केमिस्ट्री, फिजिक्स की प्रयोगात्मक परीक्षा देने

पहुंचे, तो राजेश ने अपनी जेब से मेरा और अपना कार्ड निकालकर परीक्षक महोदय के हाथ में थमा दिया। परीक्षक महोदय ने मेरे नाम के साथ बन्दर का सिर देखा तो उन्होंने हमारे साइंस पढानेवाले मास्टर साहब को बुलाकर वह अजूबा दिखलाया। डेमोन्स्ट्रेटर, लैब-ब्वाय, मास्टर साहब, परीक्षक महोदय तथा अनेक विद्यार्थियों ने भी उस कार्ड को देखा और सब हंसी से लोट-पोट हो गये। मैं तो पूरी तरह उखड़ ही गया था, शायद परीक्षा छोड़कर ही भाग खड़ा होता, लेकिन परीक्षक महोदय ने मेरी पीठ थपथपाई और पूरी सहानुभूति देकर मेरा उत्साह बनाये रखा।

उस दिन राजेश ने घर जाकर जब सारी घटना का बयान किया और परिचय-पत्र अपने पिताजी को दिखलाया, तो फिर उस रात मीनू की खैर नहीं रही। उसे सारी रात के लिए एक कमरे में बन्द कर दिया गया और खाना भी नहीं दिया गया। अगले दिन मुझे मीनू को दी गयी सजा का पता चला तो मैं अपराधी भाव से भर गया। मीनू उस घर की सबसे प्यारी बच्ची थी। मेरी वजह से उसे कितना कष्ट सहना पड़ा, यह मैं आसानी से बरदाश्त नही कर पाया। मैंने राजेश के घर जाना एकदम बन्द कर दिया। एक दिन जब मैं स्कूल मे ही राजेश को धता बताकर गाव भागनेवाला था, कि राजेश ने मुझे पकड़ लिया और बोला, "दादीजी ने तुझे बुलाया है। कहा है, ''बांगड़' को जरूर-जरूर पकड़कर लाना'।"

मैं बहुत झेंपते हुए राजेश के घर गया, तो मुझे वहां कोई भी ऐसा परिवर्तन दिखलाई नहीं पड़ा कि मैं सोच सकूं कि मीनू की सजा का कारण मैं था। यहा तक कि मुझे और राजेश को खाना भी मीनू ने ही खिलाया। मैंने चोर नजरों से, खाने के दौरान मीनू का चेहरा देखा तो मुझे उसके चेहरे पर अपने प्रति कोई दुर्भाव नजर नही आया। मीनू हमेशा की तरह चचल और स्वाभाविक थी। उस समय उसकी उम्र मुश्किल से तेरह या चौदह वर्ष की रही होगी।

मैंने एकान्त खोजकर बाद मे उससे क्षमा मागी, तो वह अपनी दुष्ट मुस्कान बलपूर्वक दबाकर बोली, "मैंने तो सही तस्वीर बनायी थी, तुम शीशे में कभी अपना मुंह तो देखते ही होगे !" मैंने सिटपिटाकर मीनू का चेहरा देखा, और वह मुझे 'बुद्धूराम' कहकर भाग गयी थी। मेरे

पता नही कैसी उथल-पुथल देर तक मची रही थी और 'बांगड़दास' तथा 'बुद्धूराम' शब्द मस्तिष्क मे बजते रहे थे।

फिर एक दिन और मुझे मीनू अकेली दिखाई पड़ी तो वह एक किताब लिये हुए थी। मैंने उत्सुकता से पूछा था, "यह क्या है, क्या कोई उपन्यास है?" उसने होंठ बिचकाकर कहा था, "मैं नही पढ़ती उपन्यास-पुपन्यास, कभी लाकर दिया तुमने कोई?"

…और उसी मीनू को लेकर मैं अपने कमरे मे पड़ा-पड़ा, न जाने क्या-क्या सोच रहा था। अब वह बड़ी हो गयी थी। राजेश को 'एयर फोर्स' मे गये कई वर्ष हो गये थे। राजेश के पिता दो वर्ष बाद अपनी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने वाले थे। मैंने एम० ए०, एल० एल० बी० करके कस्बे की कोर्ट मे वकालत शुरू कर दी थी, और एक मकान की ऊपरी मंजिल में आधा हिस्सा किराये पर लेकर वही रहना आरम्भ कर दिया था।

पिछली शाम राजेश का तार मुझे मिला था कि वह उसी शाम पहुंच रहा है। मैं राजेश से मिलने की इच्छा से उसके घर शाम को पहुंच गया था। रात को मैं देर तक इन्तजार करता रहा, लेकिन राजेश नहीं पहुंचा था। राजेश की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि जबरदस्त बादल घिर आये और मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी थी। घर मे मीनू के पिता भी नही थे। दादी की दो वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी थी। मीनू की माताजी अपने कमरे में लेटी हुई थीं—बरसात के मौसम में उनके घुटनों में भयंकर पीड़ा होने लगती थी। उनके घुटनों मे तकलीफ न होती, तब भी वे मीनू और मेरे एकान्त-मिलन मे बाधा पहुचाने वाली नहीं थी।

बाहर बरसात की रफ्तार निरन्तर बढ़ती ही चली गयी तो मैंने मीनू से लौटने की बात कही। उसने बहुत अनौपचारिक ढंग से कहा, "यहीं इसी कमरे मे लेट जाइये" और फिर उसने शरारती अन्दाज मे पूछा, "क्या घर मे कोई बहुत बेकली से इन्तजार कर रहा है? तब तो मैं नही रोकूगी।"

"तुम बेहतर जानती हो कि मेरा कहां-कौन इन्तजार कर रहा है" मैंने भी वैसा ही रहस्यात्मक ढंग अपनाया।

मीनू ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को बहुत भोलेपन से उठाकर मेरा चेहरा देखा और मुह फेरकर मुस्करा पड़ी। मुझे लगा, मीनू का मुझे रोकने का प्रस्ताव बहुत सहज तथा परिस्थितिजन्य भी हो सकता है। उसके पीछे कोई छिपा कारण होने की कल्पना मुझे नही करनी चाहिए। लेकिन क्या मुझे उसके आग्रह पर ठहर जाना चाहिए? यों तो उस घर में बचपन से ही अनेक रात ठहरता आया था, मगर अब वे मनोभाव कहा रह गये थे। क्या उस पुरुषविहीन घर मे मैं सुचित होकर ठहर सकता था? मैं ही क्यों, मीनू भी शायद उस रात उद्वेगरहित होकर चैन से नहीं सो सकती थी। हम दोनो की एक-दूसरे को बनाने की प्रवृत्ति न जाने कब बदल गयी थी। थोड़े ही अवसर आते थे, जब हम एक-दूसरे पर फब्तिया कसते थे। अब तो हम दोनों साथ बैठकर सहज रूप से बातें करने के लिए कोई विषय भी एकाएक नही पकड़ पाते थे। दोनों ही थोड़ी देर मे गभीर होकर आमने-सामने चुप बैठ जाते थे। कोई तीसरा जब हम दोनों के बीच होता तो हमे बातें करने में कोई खास कठिनाई नही होती थी। मैंने कई बार अनुभव किया था कि एकान्त में परस्पर टकरा जाने पर हम दोनों काफी देर के लिए गुमसुम हो जाते थे।

मेरी कई बार हसरत होती थी कि मेज पर टिकी हुई मीनू की गोरी-पतली अगलियों को हल्के-से छू लूं। शायद उसकी ओर से कोई आपत्ति भी न होती। अगर मैं ऐसा कर भी बैठता तो वह महज बड़ी-बड़ी आंखों से मुझे कुछ पल एकटक देखती रह जाती, और मुंह घुमाकर अचीन्ही मुस्कान उसकी आंखों मे उभर उठती। टेविल के नीचे मेरे और मीनू के पांव अगर कभी टकरा भी जाते थे, तो मैं उन्हें इतनी तेजी से पीछे हटाता था, जैसे मुझे बिजली का नगा तार छू गया हो। मेरे घामड़पन पर वह एक क्षण के लिए सकुचित हो उठती थी, और अगले पल अपनी मस्त-भावुक आंखों से मेरा चेहरा देखने लगती थी। स्पर्श के गहरे सुख की कल्पनाओं मे डूबे रहने के बावजूद मैं कभी आगे बढ़कर हल्के अथवा प्रगाढ़ स्पर्श की पहल नही कर पाता था। मैं मीनू के पास से हटता था तो अपनी झिझक को कोसता था, स्वयं पर झुंझलाता था, मगर फिर वैसा ही साहसहीन हो जाता था।

पिछली रात भी तो यही हुआ था। जब बारिश ने रुकने का नाम ही नही लिया, तो मैं अनचाहे उठकर खड़ा हो गया। अपने आग्रह की रक्षा न होते देखकर मीनू उठकर गयी और दूसरे कमरे से बरसाती तथा टॉर्च उठा लायी। दोनो चीजें मेरे हाथ मे देते हुए उसने यह भी कहा था, "अच्छा कुछ देर और रुक जाओ—मैं कॉफी बनाकर लाती हूं, हो सकता है, तब तक बरसात कुछ धीमी पड़ जाये···"

जब मीनू ने मुझे थोड़ी देर और रोकने का उपाय मेरे सामने रखा, तो मुझे कही पढ़ा हुआ शेर टूटे-फूटे रूप मे याद आ गया—

'ऐ सावन की घटा जरा थम के बरस
दिलवर मेरा आ जाय तो जम के बरस।'

लेकिन शेर मे व्यक्त की गयी प्रेमी की मनुहार भी मुझे सहज नही बना पायी। उस अच्छे-भले ठहर जाने के बहाने ने मुझे कोई दिलासा या साहस नही दिया, बल्कि मीनू को इतने निकट पाकर मेरा दिल विचित्र ढंग से धड़कने लगा। मुझे लगा, यदि मैं कुछ मिनट और मीनू के नजदीक रहा तो कोई ऐसी घटना गुजर जाएगी, जिस पर मेरा और शायद मीनू का भी वश नही रहेगा।

मैंने अपने कदमों को आगे की तरफ ठेला और बाहर जाने वाले द्वार की ओर बढ लिया। चलने की हड़बड़ी में मैंने टॉर्च मेज पर ही रख दी थी। मीनू ने मेरी इस भूल का सुधार इस रूप में किया कि मेज से टॉर्च उठाकर फिर मेरे हाथ मे थमा दी। लेकिन उसकी अंगुलियों का वह तप्त स्पर्श मुझे भीतर तक झनझना गया। मेरे मस्तिष्क मे एक लहर वेग से उठी कि मैं मीनू को खींचकर अपने बाहुपाश में जकड़ लूं। यह इतनी अकेली, अनोखी रात शायद इस जीवन मे अब दोबारा न आए। लेकिन पता नही, इस कर्म को साहस से क्रिया मे बदलने वाला मेरा पुरुष कहा खो गया!

जब मैं कोठी के बाहर सड़क पर निकला तो भयंकर वर्षा हो रही थी। गली, मोहल्ले, सड़कें, सब पानी से लबालब भरी हुई थी। सड़क पर आदमी तो क्या, कोई कुत्ता तक नजर नही आ रहा था। बिजली के खम्भों पर लगे बल्बों के प्रकाश मे आकाश से बरसती मोटी-मोटी बूंदें

लम्बे-पतले तीरों के आकार में पृथ्वी की ओर गिरकर सड़कों-गलियों के पानी मे समाहित हो रही थीं। उस तेज तूफानी हवा और वर्षा मे मैं अपने कमरे की दिशा में लौटते हुए सोच रहा था, कितनी मनुहार थी, मीनू के निवेदन में 'ऐसी बरसात मे कोई किसी को अपने घर से जाने देता है?...' मैंने स्वयं को धिक्कारा कि उसके शब्दों के भीतरी भाव को अनदेखा करके मैंने हल्के-फुल्के ढंग मे उसकी बात को यों ही उड़ा दिया। मेरी मूर्खता से अनुराग का इन्द्रजाल ही खंडित होकर रह गया। एक प्रसग जो शायद सारी भूमिकाओं का अन्त बन सकता था, मेरे गावदीपन मे आज फिर स्थगित हो गया। कौन जाने, हमेशा के लिए ही टल गया हो! मीनू की अंगुलियों का सजीव स्पर्श मेरे मन मे उद्दाम वासनाओं की बाढ़ बनकर उफन रहा था, लेकिन पांव बराबर आगे बढते जा रहे थे।

अपने निवास पर लौटकर मैंने स्वयं को इतना ज्यादा शिथिल अनुभव किया कि अधभीगे कपड़े भी नही उतारे। बरसाती कुर्सी की पीठ पर डाल दी और टॉर्च भी यों ही कही टिका दी, और टूटा तन-मन लेकर बिस्तर पर ढह गया।

न जाने कितने पहर नीद आयी। मन में बराबर तूफान उठते रहे। मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि राजेश के आने पर मैं उससे साफ बातें करूंगा, और झिझक छोड़कर कह दूंगा कि मीनू के बिना मैं जीवित नही रह सकता। लेकिन संकल्पों-विकल्पों ने मेरा पीछा देर तक नही छोड़ा। मेरे पिता जो गांव के प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर थे, गत वर्ष दिवंगत हो चुके थे। मेरे चाचा घर की देखभाल करते थे। मुझसे छोटी एक बहन भी थी, जो विवाह की उम्र में प्रवेश कर चुकी थी। काश्त की जमीन इतनी कम थी कि घर की गुजर भी कठिनाई से हो पाती थी। मैं स्वयं अभी इतना समर्थ नहीं हो पाया था कि घर-परिवार की देखभाल कर सकूं। इतने भयंकर आर्थिक संघर्ष से गुजरते परिवार का सदस्य होकर, मैं मीनू के भाई या पिता से उसका हाथ अपने लिए कैसे मागू, यह मेरी समझ में नही आता था। लेकिन मन की भावनाओ के सामने, दुनिया में फैली मजबूरियां किसे स्वीकार होती हैं? मैंने बिस्तर पर लेटे-लेटे बेचैनी से न जाने कितनी बार करवटें बदली होंगी। बस गनीमत यही थी कि मुझे रात

के पिछले पहर गहरी नींद ने दबोच लिया था।

२

दस-ग्यारह बजे तक बादल फट गये और चारों तरफ साफ-चमकीली धूप फैल गयी। मैं जिस स्थान पर रहता था, वहां जीने की दूसरी तरफ एक बड़ा हॉल, सहन और किचन वगैरह की सुविधा थी। हॉल में कॉलिज मे पढनेवाले कई विद्यार्थी, कुछ बेरोजगार नवयुवक और कई नौकरीपेशा लोग रहते थे। बराबर फक्कड़पन और मस्ती का ठाठ जमा रहता था। ज्यादातर हमउम्र लोग ही थे। मैंने कुछेक वर्ष पहले ही कॉलिज छोड़ा था, इसलिए इन लोगों से मैं आसानी से घुलमिल गया था। हम सबने खर्च की बचत के खयाल से खाने-पीने की व्यवस्था एक साथ की हुई थी। एक पहाड़ी नौकर सबका हुक्म बजा लाता था। मकान की सफाई, छोटे-मोटे कपडो की धुलाई और जैसी-तैसी रसोई यह सभी कुछ उसके जिम्मे था।

हालांकि मौसम साफ हो चला था, मगर छुट्टी का दिन होने की वजह से मैं देर तक बिस्तर पर ही पड़ा रहा। मेरी चाय, खाना वगैरह नौकर मेरे कमरे मे ही दे गया था। मैंने दोपहर का खाना खत्म करने के बाद कुछ पढ़ने की कोशिश भी की, मगर मुझे गहरी नींद आ गयी जो शाम के वक्त बाजू के हॉल से उठते शोर ने खडित की। पैरों मे स्लीपर डालकर मैं भी उधर ही जा निकला। वहां खासा हो-हल्ला हो रहा था।

छुट्टी मे एक-दो आदमी घर चले जाते थे, पर आज वे भी दिखलाई पड रहे थे। उन सबके बीच मे बालचन्द्र 'सनम' आशुकवि बैठा था और नाटकीय मुद्रा धारण करके झेंपने का भाव दिखला रहा था। मैं जानता था कि यह उसकी विशेष अदा है, अन्यथा वह परले सिरे का धूर्त था। वह स्वय को कवि घोषित करता था, पर उसकी कद-काठी कवियों-जैसी नरम-नाजुक नही थी, वह बेडौल बनावट का एक अनाकर्षक युवक था। पिछले कितने ही बरसों से वह कॉलिज मे दाखिला लिये हुए था, पर पढ़-

करपरीक्षा पास करने की रफ्तार कछुए की चाल से बेहतर नहीं थी। वह एम० ए० में राजनीति विषय लिये हुए था, मगर पूरी यूनिवर्सिटी में वह लगातार दो बार फेल होकर रिकार्ड कायम कर चुका था। यह एक ऐसा विषय था, जिसमें किसी भी गणित से, कोई एक साथ दो बार अनुत्तीर्ण नहीं होता था।

'सनम' की कनपटियां तक सफेद होने लगी थीं। हाल के जिस भाग में वह रहता था, वहां उसने एक टेबिल और लकड़ी की आलमारी जमाई हुई थी। आलमारी में बेपनाह बोतलें और शीशियां भरी रहती थीं, जिनमें तरह-तरह की दवाएं और तेल भरे रहते थे। उस हिस्से में पहुंचकर अनायास लगने लगता था, जैसे कोई 'परफ्यूम्स स्टोर' में दाखिल हो गया हो। यह सारी दवाएं अखबारों में छपनेवाले तरह-तरह के विज्ञापनों की प्रेरणा से एकत्र की गयी थी, ताकि यौवन सदियों तक कायम रखा जा सके।

मेरे वहां पहुंचते ही एक युवक बोला, "भाई साहब, 'सनम' का स्वेटर देख रहे हैं आप?"

"देख रहा हूं भाई! ऐसा नायाब पुलओवर मैंने अपनी जिन्दगी में सचमुच ही पहली दफा देखा है। लगता है, किसी 'स्वप्न सुन्दरी' ने सनम को गाढ़े प्यार का उपहार भेजा है।" मैंने अपने चेहरे पर भरपूर गंभीरता ओढ़कर कहा और साथ ही स्वेटर छूकर भी देखा।

एक अन्य युवक जो कॉलेज में हड़तालें कराने के लिए अत्यन्त विख्यात था और प्रत्येक मुद्दे में हड़ताल की सम्भावना खोजता रहता था, सिगरेट का लम्बा कश खींचकर बोला, "वर्माजी, आपका अनुमान सिरे से ही गलत है।"

मैंने उससे तत्काल सहमत होते हुए कहा, "हड़ताली जी, मैं स्वीकार करता हूं कि सनम को लेकर मेरा कोई भी अनुमान गलत हो सकता है; लेकिन आज का अनुमान शायद गलत नहीं है। आपको याद है, 'यूथ फेस्टिवल' में एक-से-एक लम्बे, गोरे, तगड़े, खूबसूरत नौजवान आये थे, लेकिन सैकड़ों लड़कियों के बीच जो सबसे स्मार्ट और हसीन लड़की रोमा थी, उसे हड़ताली साहब आप नहीं हथिया पाये थे, अपनी शायरी सुनाकर सनम ने ही उसे जीत लिया था। अरे भई, तुम यह क्यों भूल जाते हो,

अपने शायरे-आजम सनम साहब अपने शेरों और गजलों के सहारे बड़े-से-बड़ा शिकार फसाने मे कामयाब हैं !"

मेरे मुह से अपनी प्रशसा सुनकर बालचन्द्र सनम भीतर-ही-भीतर पुलकित हो उठा और चेहरे पर कृत्रिम विनम्रता लाकर बोला, "वर्माजी, मुझे क्यों घसीटते हो···बड़े भैया, आप भी तो कुछ कम नहीं हैं, आपके रोमास के चर्चे तो···"

अपनी प्रशसा को स्थायी बनाने के लिए किसी अन्य को भी श्रेष्ठ बतलाना सनम की चतुराई थी, सारी उपस्थित मंडली यह जानती थी। उसकी बात सुनकर कटारिया ने जो डाकखाने मे तारबाबू था, टिप्पणी की, "अरे गजब ! सनम तो ऐसे शरमाकर बोल रहा है, जैसे कोई नयी-नवेली अपने पतिदेव की छेड़खानी पर आजिजी से कहे, "अजी आप तो बड़े वो हैं।"···

"भाइयो ! इस तरह तो असली मुद्दा ही गुम हो जाएगा !" किसी ने हम सबको ज्यो ही यह बात याद दिलाई, तो फिर सब सनम के स्वेटर की खूबिया बयान करने लगे। कोई मेरे कान मे चुपके से फुसफुसाया, "दर-असल यह स्वेटर सनम की प्रेमिका ने उदयपुर से भेजा है !"

मैंने सनम को छेड़ा, "तो जनाब, अब उदयपुर तक हाथ मारने लगे हैं !"

सनम रहस्योद्घाटन के अन्दाज में बोला, "आपको कैसे मालूम हो गया वकील साहब ? किसने बतलाया आपको ? वाकई यह उदयपुर से ही आया है, मगर मैं आपको एक बात बतला दू···यह मेरी किसी नयी प्रेमिका का भेजा हुआ नही है, बल्कि पुरानी प्रेमिका की भेजी हुई 'बर्थ-डे गिफ्ट' है।"

इस पर एक धमाकेदार ठहाका गूजा और उस प्रेमिका के फोटो की सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए मांग की गयी। हंसी-मजाक चल ही रहा था कि हड़ताली ने हवा मे अपना दायां हाथ उठाकर ऐलान किया, "भाइयो, आप सब शात हो जाइये। बालम को आप लोग बरसो से जानते-पहचानते हो। यह नौजवान कालिज की सुन्दर और भद्दी लड़कियों से बिना किसी भेदभाव के एक-सा ही प्रेम करते हैं।" हड़ताली ने किसी मजमेबाज की

तरह बात आगे बढ़ाई, तो भाइयो, "मैं आपकी जानकारी बढ़ाता हूं। करीब पन्द्रह रोज पहले सनम ने यह स्वेटर चौहान और लखनराम के कमरे पर जाकर दिखलाया था और कहा था कि यह स्वेटर उसकी प्रेमिका हीर मलिक ने भेजा है। मेहरबानी करके वह सज्जन खड़े हो जायें, जिन्हें यह 'फैक्ट' मालूम है।"

"यहां बैठा ही कौन है?" कहने के बावजूद सब-के-सब अपने-अपने स्थान पर इत्मीनान से बैठे रहे।

हड़ताली के इस नये रहस्योद्घाटन पर कोई भी विचलित नहीं हुआ। हां, सनम ने अपने गर्दन पर खुजलाकर यह प्रतिवाद अवश्य व्यक्त किया, "पन्द्रह नहीं, यह बात बीस रोज से पहले की है!"

एक छतफाड़ ठहाका सारे हॉल में गूज उठा। हड़ताली एकदम गंभीर हो गया और उसने आखिरी कश लेकर सिगरेट को फर्श पर फेंक दिया। वह परम शान्त स्वर मे बोला, "लीजिये, यह सच्चाई तो जनाब सनम साहब ने खुद ही मान ली! अब मैं खास मुद्दे पर आता हूं, कल जब मैं, बालम के घर से निकलने के बाद कालिज जा रहा था, तो पोस्टमैन आया और उसने कहा, "सनमजी की एक बैरंग चिट्ठी है।" मैंने जुर्माना चुकाकर चिट्ठी ले ली। यह सोचकर कि किसी सम्पादक ने भेजी होगी, उसे बिना किसी खास उत्सुकता के खोल लिया। वह चिट्ठी उपस्थित सज्जनों के सामने हाजिर है—सब लोग इसे पढ़ डालिये, एक नयी हकीकत आपके सामने प्रकट होगी!" जैसे मदारी मजमे की ओर देखकर हलक से बजरबट्टू निकालता है, उसी शैली में हड़ताली ने अपने कुर्ते की जेब से एक मुड़ा-तुड़ा लिफाफा निकाला। लिफाफा खोलकर उसने एक कागज निकाला और मजमून जोर-जोर से पढ़ना शुरू कर दिया—

आदरणीय भैया!

अत्र कुशलम् तत्रास्तु!

आप अब कैसे हो गये हैं, महीनों तक एक कार्ड भी नहीं लिखते! अम्मा और बाबू आपकी इस लापरवाही से बहुत दुखी हैं। मैंने इतने मन से आपके लिए स्वेटर बनाकर भेजा, लेकिन आपने उसके पहुचने की भी खबर नहीं भेजी। स्वेटर वैसे तो आपके नाप का ही बनाया है, पर पता

नही, फिट आएगा या नहीं ! आपको नीला रंग पसन्द है, पर अम्मा ने हल्का पीला पसन्द किया। अब आप फौरन खत लिखें।

आपकी प्यारी बहन
'रमा'

हड़ताली के हाथ में अपनी बहन का पत्र देखकर सनम एक क्षण के लिए तो भौंचक्का ही रह गया, मगर अगले ही पल शर्मिन्दगी और लानत को एक तरफ झटककर बोला, "मिस्टर होतीलाल हड़ताली, आपको लज्जा आनी चाहिए। आपको किसी भी शरीफ नागरिक का घरेलू पत्र पढ़ने का आखिर अधिकार ही क्या है? आपको डूब मरने की कोई जगह नही मिली? मैं लानत भेजता हू, आपकी इस घटिया खुफियागिरी पर !"

हड़ताली जो अपने मां-बाप का दिया नाम सुनकर एकदम भड़क उठता था, भड़ककर बोला, "हां गीदड़ की औलाद, हमें तो लज्जा आनी ही चाहिए, और तेरा अभिनन्दन होना चाहिए जो सगी बहन के बुने हुए स्वेटर को प्रेमिका का उपहार बतलाता घूम रहा है ! मैंने इसी अनैतिकता का भंडाफोड़ करने के मुद्दे को लेकर शहर के सारे कालिजों मे हड़ताल न करा दी तो मेरा नाम हड़ताली न कहना !"

अपनी बात खत्म करके हड़ताली अपने स्थान से उठा और सनम के नजदीक पहुंच गया। कोई कुछ भी समझ पाए, इससे पहले ही उसने सनम के सिर पर हल्के से एक चपत लगायी, जिसका गूढ़ अर्थ यह था कि उस स्थान पर उपस्थित हर आदमी सनम के सिर पर एक-एक चपत लगाये। उन लोगों ने एक-दूसरे को सजा देने का यह अद्‌भुत नियम बना रखा था।

कहने की जरूरत नही कि प्रत्येक सदस्य ने अपने-अपने स्थान से उठकर क्रम से हड़ताली का अनुकरण किया, और चपत-कार्यक्रम के बाद सनम को शाम की चाय और नाश्ते का प्रबन्ध अपनी जेब से करना पड़ा।

जब पड़ोसियों की तरफ से मैं अपने कमरे में लौटा तो रात पूरी तरह घिर चुकी थी। शाम होते ही मुझे विचित्र-सी उद्विग्नता घेरने लगती थी। मैं बिस्तर पर बैठकर सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। राजेश के आने की कोई सूचना मुझे आज दिन भर नही मिली थी। राजेश आया

होता तो मुझे सूचना अवश्य मिल जाती, वह स्वयं ही आ धमकता।···

पड़ोस से अभी तक हा-हा हू-हू की आवाजें आ रही थी, शायद अभी तक 'सनम' वाली घटना को लेकर ही वे लोग रसमग्न थे। हालांकि दूसरे साथियों के साथ मैं भी सनम के झूठ पर जी भर हंसा था, लेकिन गहराई मे जाने पर मुझे उस कुण्ठा का परिचय मिल गया था, जो प्रत्येक मनुष्य के मन मे मौजूद रहती है और न जाने कब-क्या नाटक रचवा देती है। मैंने एक बार सुना था 'कि एक आदमी का विवाह नही हो पाया था लेकिन पड़ोसियों का कहना था कि उसके कमरे से रात्रि के समय चूड़िया खनकने की आवाज आती थी। एक रात कई लोगों ने एकाएक उसकी भीतर से बन्द कुण्डी को जबरदस्ती खुलवाकर देखा तो पाया, उसके बिस्तर पर तरह-तरह की चूड़ियां बिखरी पड़ी थी, लेकिन कमरे मे कोई भी स्त्री नहीं थी। बाद में पता चला कि वह बेचारा स्वय ही बैठा चूड़िया खनकाता रहता था।' ठीक यही स्थिति आज मैंने सनम की पायी। यदि उसकी कोई वास्तविक प्रेमिका होती, जो उसे स्वेटर बनाकर भेज सकती, तो क्या वह इतनी शर्मनाक हरकत करता? ऐसा कौन है, जिसका मन भावावेश की उम्र मे एक सच्ची हाड़-मांस की प्रेमिका के लिए न तड़पता हो!···

सहसा मेरे कमरे का उढका हुआ दरवाजा खुला और मेरा तथा पड़ोसियों का सम्मिलित नौकर रमलू मेरे लिए खाने की थाली लेकर आ गया। मैंने चौंककर कलाई-घड़ी पर नजर डाली, सवा नौ बज रहे थे। मुझे शाम के इतने सपाटे से गुजर जाने पर हैरत हुई। मेरे पांवों में मीनू के पास जाने की बेचैनी सरसराने लगी। मैंने हठपूर्वक सोचा वहां मेरा हर रोज जाना शायद ठीक नही है। मीनू के पिता रात को प्रायः देर तक घर मे नही होते, सिर्फ मीनू और उसकी माताजी ही वहां होती है, मीनू की बात तो और है, मगर कभी उसकी माताजी ने कोई ऐसा-वैसा संकेत कर दिया तो मरने को भी जगह नही रहेगी।

मैं उठकर कमरे मे टहलने लगा। खाना मेरी मेज पर रखकर रमलू जा चुका था, लेकिन खाना खाने की मेरी इच्छा कतई मर चुकी थी। एक मन कहता था, मीनू के यहां जाना छोड़ दो, लेकिन तत्काल ही दूसरा मन कहता था, ऐसी कोई बात नहीं है, मीनू के पास जाना गलत भी

है। उसकी आंखों में हमेशा एक आमंत्रण रहता है। मैं चाहे पूरे दिन बैठूं या आधी रात तक बैठा रहू, चलते समय उसकी आंखें हमेशा यही आग्रह करती हैं, "क्यों जाते हो, अभी और बैठो।" लेकिन जब मैं आंखों के मूक अनुरोध को अनदेखा करके चल ही पडता हू, तो वह यह अवश्य पूछती है, "कल कब आओगे ?"···

मैं प्राय: उसकी जिज्ञासा का उत्तर नही देता, बस एकटक उसका चेहरा देखता रहता हू और फिर पैरो को ठेलते हुए आगे बढ़ जाता हूं, तो वह गलियारे मे आकर खडी हो जाती है और मुख्य द्वार से तब तक नही हिलती, जब तक मैं पूरी लेन पार करके मुख्य सडक पर नही पहुंच जाता। मीनू के शब्दो से मिलने की जो चाह मेरे कानों तक पहुचती है, वह मेरे भीतर एक अन्धड-सा पैदा कर देती है। चलते-चलते सिर मे तरह-तरह के स्वर गूजने लगते हैं और मुझे लगता है, जैसे मैंने कोई तेज नशा कर लिया हो। कई बार तो पूरी-पूरी रात बगैर सोये कट जाती है।

मैं चकरघिन्नी की तरह कमरे मे चक्कर काट रहा था। रमलू तश्तरी मे चपातियां लेकर आया और बोला, "अंय, साहबजी ने तो अभी खाना भी शुरू नही किया, रोटियां तो पड़ी ठडी हो रही हैं।"···

मेज के पास पहुंचकर मैं कुर्सी पर बैठ गया और बेमन से खाने लगा। मुझे गुमसुम खाना खाते देखकर रमलू थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा, और फिर चला गया। उसे मालूम था कि मेरा मूड ठीक नही होता हैं तो मैं बिना बोले खाना खाता रहता हू, अन्यथा उससे दुनिया-जहान की सैंकडो बातें खाना खाते समय ही करता हू। उसके घर-द्वार की बातें, घर के हालात, बाप की बीमारी, कर्ज-पत्ता, और उसकी शादी कब होनेवाली है, यह जिज्ञासा सारी बातों के बाद अवश्य उसके सामने रखता हूं।

मैं खाना समाप्त कर चुका तो रमलू आया और मुझे टहलते देखकर आत्मीयता से बोला, "साहबजी, थोड़ी देर घूम आओ, आज तो आप पूरे दिन घर मे से निकले ही नही हैं।" मैंने उसकी बात पर कोई गौर नहीं किया तो वह जूठे बर्तन उठाकर चला गया।

हालांकि मेरी स्वय की इच्छा कमरे मे ठहरने की नही थी, लेकिन अब दस बज चुके थे, कही जाने का वक्त भी कहा रह गया था। मैंने

अपने मन को ठेलकर काम में लगाने की सोची। डायरी उठाकर कल की तारीख में लिये जानेवाले मुकदमो पर सरसरी नजर डाली, तो मुझे सहसा याद आ गया कि बतरा का मुकदमा मुझे कल ही करना है, अगली सुबह ही बहस की तारीख है।

मैं बतरा की मिसल लेकर मेज के सामने ही बैठ गया। मुकदमे मे कोई खास बात नही थी, 'अनऑथराइज्ड पजेशन' का केस था। पहले भी दो तारीखें पड़ चुकी थीं। मैंने मिसल मेज पर ही रख दी और बिस्तर पर जाकर लेट गया।

कही दूर बारह घंटे बजे तो आधी रात हो जाने का अहसास हो गया। मैंने अपने मन को सयत करने के खयाल से आंखें बन्द कर लीं। बहुत पहले पढी हुई कविता की पंक्तिया मेरे जेहन मे उभर उठी—

> साझ होते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी,
> क्या किसी की याद आयी, ओ विरह-व्याकुल प्रवासी ?

पर अब साझ नही थी, आधी रात जा चुकी थी, और प्रवासी मन न जाने कहा दूर-दूर भटक रहा था। जब सोचने की दिशाएं हाथ से छूटने लगी तो मुझे गहरी नीद आ गयी।

३

कचहरी में मुवक्किल बतरा मेरे बस्ते पर बैठा, बेचैनी से मेरा इन्तजार कर रहा था। मेरे मुंशी ने मेरे कान में फुमफुमाकर कहा, "वकील साहब, यह टुंडा तो आज भी खाली हाथ ही आया है ! मुझे तो यह बना हुआ, एक नम्बर का पाजी लगता है। यह उल्लू समझता है कि इसके बहकावे में आकर हम इसका सारा काम बातो मे कर डालेंगे।"

मैंने मुंशी की सलाह पर ध्यान न देकर कहा, "तुम मुझे बतरा की मिसल दो और जाकर देखो, इनका केस किस नम्बर पर है !"

मुंशी का चेहरा बुझ गया और वह मन में भुनभुनाते हुए चला गया। मेरे मुंशी को मुझसे सबसे बडी शिकायत यही है कि मैं एक पैंतरेबाज वकील की तरह रौब-दाब से काम नही लेता। वह एक उम्रदराज, खुर्राट आदमी है, और इशारो मे कई बार जतला चुका है कि मैंने चालाकी से काम नही लिया तो मेरी वकालत कभी नहीं जम पायेगी।

मेरे मुवक्किल बतरा को एक 'प्रॉपर्टी डीलर' ने ठग लिया था। वह डेयरी का काम करना चाहता था। एक मक्कार दलाल ने उसे ऐसी जमीन दिलवाई थी, जिसका किसी अन्य व्यक्ति के नाम पहले से ही बैनामा था। बतरा ने दलाल का फरेब नही समझा और जमीन पर चारदीवारी खडी करके डेयरी का काम शुरू कर दिया। बाद मे असलियत खुली तो मुकदमा शुरू हो गया, डेयरी अलग से बन्द हो गयी।

चूंकि यह कोई खास मुकदमा नही था, इसलिए मेरे मुशी को इसमें ज्यादा कुछ मिलने की भी उम्मीद नही थी। थोडी देर बाद मुंशी आया और बोला, "मुकदमे की पेशी अगली तारीख पर होगी, हाकिम आज बैठा ही नही है!"

मुंशी की बात सुनकर बतरा का मुह सूख गया और वह चुपचाप सिर झुकाये कुर्सी पर बैठा रहा। मैंने बतरा के लिए चाय मगवाने की व्यवस्था की और उसे आश्वासन देते हुए बोला, "अगली पेशी पर फैसला होकर रहेगा बतराजी, आप निश्चिन्त रहें!"

बतरा ने अपनी बुझी-बुझी आखें मेरी ओर उठाई और उन्हें फिर झुका लिया।

लगभग चार बजे, मैं लगातार तीन मुकदमे निपटाने के बाद जब अपने बस्ते पर लौटा, तो यह देखकर दग रह गया कि बतरा मूर्तिवत् कुर्सी पर ही बैठा हुआ था। मैंने मुशी को निर्देश दिये और चलने लगा, तो बतरा अपनी कुर्सी छोडकर उठ खडा हुआ और मेरे पीछे चल पड़ा।

मैंने बतरा का चेहरा देखा, वह बेहद थका हुआ, उदास और बूढा लग रहा था। उसका एकमात्र पुत्र वर्षों पहले घर छोडकर जा चुका था, घरवाली की मृत्यु हो चुकी थी, घर में दो बेटिया थी, जिनमें एक शायद जवान थी और एक बच्ची। उसके पास कोई जमा-पूजी भी नही थी।

देश के बटवारे मे वह जो कुछ साथ लाया था, वह सब दुर्दिन और पेट की आग मे स्वाहा हो चुका था। वह डायबिटीज का असाध्य रोगी था, ऑपरेशन मे वह अपना एक हाथ भी गवा चुका था।

बतरा मेरे पीछे घिसटता-सा चल रहा था। यो मैं तेज गर्मी से बचने के लिए रिक्शा लेना चाहता था, लेकिन उसे अपने पीछे आता देखकर पैदल ही बढ़ रहा था। उसने आह-जैसी एक लम्बी सांस खीचकर कहा, "वकील साहब, आपकी मर्जी हो तो कही बैठकर चाय पियें।"

यद्यपि मेरी इच्छा अब बीच मे कही अटककर चाय पीने की नही थी, बदन पर कपड़े चिपचिपा रहे थे, लेकिन मैं सहसा मना नही कर पाया। मेरे दोस्त राजेश का तार आया पड़ा था, वह किसी क्षण भी आ सकता था, और इसके अलावा मुझे बतरा का साथ दुखदायी मालूम पड रहा था। मैंने अपनी अनिच्छा बलपूर्वक दबाकर कहा, "हा-हा, क्यों नही, चाय जरूर पी जाए!"

सामने ही एक रेस्त्रा था, मैं उधर ही बढ गया। मेरे पीछे बतरा भी आ गया।

चाय पीते समय मैं बराबर चुप बना रहा। सहसा बतरा ने मुझसे पूछा, "आप शतरज खेलना पसन्द करते है?"

मुझे शतरज के खेल के बारे में कोई ज्ञान नही था, इसके अतिरिक्त उसमें मेरा कोई आकर्षण भी नही था। मैंने बतरा का चेहरा ध्यान से देखा और यह जानने को उत्सुक हो उठा कि शतरज के खेल से इस समय बतरा का क्या सरोकार हो सकता है? मैंने उसे छेडा, "आपने यह बात क्या किसी खास मतलब से पूछी है बतरा जी?"

"जी नही, यो ही पूछ बैठा, बस! शतरंज का खेल एक तरह से जिन्दगी के खेल से मेल खाता है, यहां भी शह और मात के अलावा कुछ नहीं है!" वह एक क्षण ठहरा और फिर लम्बी सांस खीचकर बोला, "और जहां तक मेरा ताल्लुक है जनाब, मेरा तो खेल अब खत्म ही समझिये!"

मुझे उसके निराशाभरे शब्दो से धक्का-सा लगा। मुझे राजेश के घर पहुंचने की भी उत्सुकता थी। वहां मीनू मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। पर

४६ | ८

अब अपनी ओर से उतावली दिखाना, मुझे बतरा के साथ सरासर अन्याय लगा। बतरा जब चाय पी चुका तो मैंने आगे बढ़कर 'काउन्टर' पर दो प्याले चाय के पैसे रख दिये और बोला, "अच्छा बतरा साहब, अब आज्ञा दीजिये !"

बतरा ने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और फिर मेरे साथ ही आगे बढ़ने लगा। कोई दो सौ गज चलने पर एक गली की ओर संकेत करके वह बोला, ' जनाब वकील साहब, मैं वहां रहता हूं। गली के अन्दर घुसने पर दाहिनी तरफ पांचवा मकान है। अगर कोई बहुत खास काम न हो तो चन्द मिनट के लिए गरीबखाने पर भी चलिये !"

उसके इस प्रस्ताव को मानने की तो बात ही क्या, मैं तो इस समय कुछ सुनने को भी तैयार नहीं था। मेरे पांव व्यग्रता से आगे बढ रहे थे और मैं उन्हें कठिनाई से रोके हुए था। मैंने हाथ जोड़कर कहा, "बतरा साहब, इस समय तो क्षमा ही करें, फिर कभी देखा जायगा। मुझे एक जगह बहुत जरूरी काम से जाना है।"

वह मायूसी से बोला, "अच्छा, तो फिर जाइये जनाब ! शतरंज की एक-दो बाजी कभी खेलने आयेंगे तो मुझे खुशी होगी।"

मैंने अफरा-तफरी मे उससे वायदा किया और दोबारा हाथ जोड़कर आगे बढ गया।

अनजाने में पैदल ही लम्बा रास्ता तय करके मैं अपने मित्र राजेश के घर पहुच गया। मैं दो क्षण बरामदे में सीढियो के पास खड़ा कुछ सोचता रहा, शायद मैं मीनू को अपनी प्रतीक्षा मे टहलते देखना चाहता था। फिर मैं दबे पाव कमरे मे घुसा तो घर का पुराना नौकर दीनानाथ मुझे देखकर बोला, "मीनू बिटिया अम्मा के साथ बजार गयी हैं।"

दीनानाथ की इस सपाट सूचना से मुझे अपना अपमान होता लगा और मैंने सोचा कि मीनू को मेरी कोई प्रतीक्षा नही थी, अन्यथा वह शाम के समय घर से न जाती। मैंने अपना मनोभाव दबाकर दीनानाथ से पूछा, "क्या राजेश आज भी नही आया? अच्छा तो अब मैं चलता हूं !" मैं कुछ सफाई-सी देते हुए बोला, "मैं तो राजेश की वजह् से ही आया था।"

दीना ने मुझे जाते देखा तो व्यस्त होकर बोला, "अबई मत जाओ

भैयाजी, मां जी और भैन जी आवत ही हूंगी। अबार ते गयी हैं, आने में जादे टैम ना लगेगो···"

दीना का आग्रह देखकर मैं लौटते-लौटते ठहर गया। मैंने उससे पूछा "मीनू मेरे लिए कुछ बोल गयी है?"

दीना यकायक इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सका। वह बस इतना भर कह पाया, "आप बैठो तो सई, मैं आपके लैया चाह बनाय दँगो, जित्ते टैम में चाह खतम होयगी, मीनू और अम्माजी उत्ते खन मे जरूल आ जावंगी।"

कुछ मिनट बाद वह चाय बनाकर ले आया और प्याला मेरे सामने रखते हुए बोला, "मैं भैया जी, भूल गयो हतो, बिटिया आपकू ठैरने कू बोल गयी हती।" और यह कहकर उसने अपने कान छूये, गोया वह कोई बहुत बड़ा अपराध कर बैठा हो।

उसके कान छूने पर मुझे अनायास हंसी आ गयी। मैं मुस्कराकर बोला, "दीना, अब तुम बूढ़े होते जा रहे हो, तुम्हारी याददास्त कमजोर होने लगी है!"

मैं मीनू की पढ़ने की मेज के निकट पड़ी कुर्सी पर बैठकर चाय पीने लगा, और मेज पर बेतरतीब पड़ी कापियों को यों ही उलटने लगा। शायद मेरे मन में कोई अस्पष्ट बात जानने की उत्कण्ठा थी। कई बार लड़कियां अपनी कापियों में किसी रोमानी कवि की कुछ पंक्तियां या मन को छू लेने वाले कुछ कोमल वाक्य लिख लेती हैं, और यह ठाली-बैठे आदमी के लिए एक दिलचस्प शगल हो उठता है।

मीनू की कई कापियां मैंने उलटीं। एक कापी में एक पृष्ठ पर कई स्थानों पर मीनू, मीना तथा मीनाक्षी लिखा था। उन नामों को बार-बार लिखे जाने का अभिप्राय सम्भवतः कलम के नये निब को सहज लिखने योग्य बनाना रहा होगा।

न जाने क्यों मेरे अन्तर्मन में यह विश्वास था कि मीनू ने अपनी कापियों में कहीं-न-कहीं अपने नाम के अलावा कोई और नाम भी जरूर लिख रखा होगा!

सहसा द्वार पर आहट हुई तो मैंने देखा, मीनू पर्दा हटाकर कमरे में

घुस रही है। उसके चेहरे पर बहुत मोहक मुस्कान दीख पड़ती थी। उसके घने और गहरे काले बाल उसकी पीठ पर फैले हुए थे। मेरे नजदीक आकर वह क्षमा-सी मांगते हुए बोली, "प्लीज माफ करना, लगता है, आप काफी देर से बैठे हैं !" मैं सहसा कोई उत्तर न दे सका, क्योंकि उसकी नोटबुक अभी मेरे हाथों में ही थी। उसने सम्भवतः यह देखकर भी कुछ नही कहा। फिर व्यस्तता से बोली, "राजेश का प्रोग्राम तो बदल गया, आज पापा को उसने टेलीफोन पर दोपहर सूचित कर दिया है।"

मेरे मुंह से अनायास एक लम्बी सास निकल गयी। मैंने उसकी कापी मेज पर धीरे से रखते हुए कहा, "मुझे यहा आये अभी ज्यादा समय नही हुआ और हो भी जाता तो क्या था, कुछ प्रतीक्षाएं कभी लम्बी नही लगतीं !"

उसने मेरे चेहरे को ध्यान से देखा और भेदभरी मुस्कराहट उसकी आखो मे तिर आयी। उसने धीमे से फुसफुसाकर पूछा, "तो क्या आज का इन्तजार भी उसी तरह का था ?"

"यह तो समझने से सम्बन्ध रखनेवाली बात है, शब्दों मे कहने का अर्थ भी क्या है !" अपने शब्दो को यथासम्भव कोमल बनाकर मैंने कहा और उत्सुकता से भरकर उसका मुह देखने लगा।

पता नही, उसने कही पढा था या वह उसके अपने उद्गार थे, लेकिन जो भी हो, उसके इन शब्दो से मैं अभिभूत हो उठा, "समय तो निरन्तर एक-सा है, हम लोग ही उसे चलते हुए अनुभव करते हैं और हम ही उसे ठहरा हुआ समझते हैं। पता नही, किसके प्रसंग मे, समय किसमे क्या अनु-भूति भरता है !"

मैं अभी उसके शब्दोंकी गम्भीरता में ही डूबा हुआ था कि वह खिलखिलाकर हस पडी और बोली, "गोली मारिये इस फिलॉसफी को ! आप चाय पीजिये, इस चक्कर मे ठडी हो रही है।"

मीनू ने गम्भीर होती बातचीत को एक झटके मे तोड़ दिया। मुझे इससे क्षोभ ही हुआ। कभी-कभी आदमी अपने प्रिय व्यक्ति से जो कहना चाहता है, स्पष्ट शब्दो के बजाय सकेतों मे प्रकट करता है, अथवा पुस्तकों के उद्धरणो से काम लेता है, लेकिन यदि एक बार तार टूट जाये तो फिर

उसे जोड़ना सम्भव नही हो पाता। मैंने अन्यमनस्क होकर उठते हुए कहा, "लगता है, राजेश अब शायद देर बाद ही आयेगा। मैं चलता हूं, कही आज फिर कल की तरह बारिश न होने लगे !"

"देख रही हूं, आजकल आप बारिश से बहुत घबराने लगे है !" मुझे द्वार की तरफ जाते देखकर मीनू ने चुटकी ली।

मैंने कहा, "बारिश से घबराना ही पड़ेगा। कल रात आपने टॉर्च और बरसाती दे दी थी, आप रोज-रोज यह टार्च और बरसाती कहां तक देती रहेंगी ?"

"आप भीगे या कुछ, लेकिन अभी जा नही सकते, खाना खाकर जाना पडेगा !"

मीनू का आग्रह टालना मेरे लिए सम्भव नही था, मैं लौटकर फिर कुर्सी पर बैठ गया। उसने अपने पैरों के पास से एक डिब्बा उठाकर मुझे दिया और बोली, "देखकर बतलाइये, यह साडी कैसी है ?"

मैंने 'मीनाक्षी एम्पोरियम' का गत्ते का डिब्बा खोलकर साडी देखी और हसकर बोला, "आप यह साडी मुझे किस उद्देश्य से दिखा रही हैं ?"

"एक विशेष प्रयोजन से कि देखू, आपको यह पसन्द आती है या नही !"

"पसन्द से भी क्या होगा, मुझे क्या साडिया खरीदनी या बेचनी हैं ?"

"बेचने की बात तो मैं नही जानती, पर खरीदनी तो पडेंगी ही किसी दिन"···यह कहकर मीनू ने कौतुक से मेरी ओर देखा और हस पडी।

लगभग नौ बजे खाना खाकर जब मैं वहा से उठा तो मेरा मन बहुत हल्का और प्रसन्न था। मीनू मुझे बराण्डे तक छोडने आयी और हाथ जोडकर नमस्ते करते हुए बोली, "देख लीजिये, आसमान अभी साफ है या नही, कभी रास्ते मे बरसात आये और आप भीग जायें !"

मैंने बराण्डे की सीढ़िया उतरते हुए उसकी ओर मुडकर देखा और बोला, "देख रहा हूं, आजकल आप आसमान की बहुत चिन्ता करने लगी हैं !"

वह आखें ऊपर चढाकर बोली, "अच्छा जी ! हमें आसमान की बहुत चिन्ता है, और आपको बिल्कुल नही है? अभी थोड़ी देर पहले कौन कह रहा था कि कहीं आज फिर कल की तरह बारिश न होने लगे ?"...

कुछ उत्तर न देकर मैं हंसते हुए आगे बढ़ गया। गली में चलते हुए मैंने महसूस किया कि मीनू अभी बराण्डे की रेलिंग पर झुककर मुझे जाते हुए देख रही है। गली के मोड़ पर पहुचकर मैंने पीछे मुड़कर देखा और आगे चल दिया। मीनू अभी तक रेलिंग के साथ लगी खडी थी, और उसकी आखें मेरी दिशा मे ही देख रही थी।

४

उस शाम के बाद मैं पूरे सप्ताह मीनू के पास नही गया। हालांकि प्रत्येक शाम मुझे मीनू की स्मृति बुरी तरह कचोटती थी, लेकिन मीनू अब बहुत बदल गयी थी। उसका वह बचपन, यौवन की दहलीज पर उसे छोडकर जा चुका था, जो उसे ढीठ बनाये रखता था। अब तो वह मुझे उकसाती थी और चालाकी से पीछे हट जाती थी।

मैं अजीब मन:स्थिति मे दिन गुजार रहा था। मुझे इस बात पर भी गहरा क्षोभ था कि पहले की तरह मीनू ने एक हफ्ते तक मुझे बुलवाया भी नहीं। मुझे रात को नीद भी ठीक से नही आती थी, अजीब-सी बेचैनी में सारी रात गुजर जाती थी।

एक अनाम-सी प्रतीक्षा मे दिन बीत रहे थे। ऐसी ही एक सुबह मेरे द्वार पर दस्तक हुई। यो मैं जागा हुआ था, मगर आलस्य के कारण उठ नही रहा था। मेरा नौकर रामफल, मुझे सोया समझकर चाय के लिए भी पूछने नही आया। वह शायद चौके में बर्तन वगैरह साफ कर रहा था, इसलिए दरवाजे की खटपट उसने नही सुनी। मैंने भी उठने की कोशिश नहीं की, तो इस बार किसी ने दरवाजे पर बूट से ठोकर दी। मैं तत्काल समझ गया कि यह राजेश ही हो सकता है। मैं तत्परता से उठा और

दरवाजे की तरफ लपका। इसी समय मैंने सुना, "अबे कुम्भकर्ण के नाती, इसी रफ्तार से सोता रहा तो तेरी वकालत जहन्नुम रसीद हो जायेगी ! कोई वक्त है यह, बिस्तर में घुसे रहने का !"

दरवाजा खोलते ही मैंने देखा कि राजेश अकेला नहीं था, उसके पीछे एक दूसरा नौजवान भी था जो खड़ा मुस्करा रहा था। राजेश आगे बढ़-कर मेरी गर्दन में झूल गया। आलिंगन से मुक्त होकर वह अपने साथी की ओर मुड़ा और बोला, "आपसे मिलो, ये मेरे साथी कैप्टेन केसरी नारायण हैं। हम लोग एक हफ्ते अब यहीं हैं। तुम एक मिनट में तैयार हो जाओ! आज जरा गांव की तरफ भी चलना है। पापा के बैंक में 'रिजर्व बैंक' से 'ऑडिट सेल' आया है, वह तो गांव की प्रॉब्लम्स मेरे सिर छोड़कर बेफिक्र हो गये, मुझसे कह रहे हैं कि गांव जाकर जरा किसानों से निपटो ! उन दहकानियों ने बरसों से बकाया ही नहीं चुकाया···"

जब राजेश लगातार बोलता ही चला गया तो मैंने उसे टोकते हुए कहा, "जरा सांस तो ले ले यार ! गांव चलना है तो चलेंगे, मगर पहले चाय तो पी ली जाये एक-एक प्याला !"

वह कमरे में चहलकदमी करते हुए मुझसे बोला, "अच्छा ठीक है, चाय पी लो ! और हां" फिर वह अपने मित्र की ओर मुंह करके बोला, "केसरी, इनसे मिलो। यह मेरे लंगोटिया हैं मिस्टर अक्खील, यानी वक्कील उर्फ अखिल वर्मा !"

मैंने रामफल को आवाज दी, तो वह रसोई से अपने गीले हाथ झटकते हुए आया और बोला, "चाय ले आऊं उकील साब ? मैंने आपकूं डर के मारे जगाओ नाय हतो !"

"ठीक है, ठीक है ! नहीं जगाया तो बड़ा भारी तीर मार लिया। अब एक मिनट की भी देर मत कर, फटाफट चाय ला, हम लोगों को जाना है !" कहकर राजेश ने अपनी कलाई-घड़ी देखी और जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर एक सिगरेट जला ली।

चाय खत्म करके मैं जल्दी-जल्दी तैयार हुआ और अपने मुंशी के नाम एक चिट लिखी कि मैं आज कोर्ट नहीं जा सकूंगा। इसी समय मुंशी न जाने कहां से आ टपका। उसे देखकर राजेश बोला, "मुंशी जी आपके

कुछ मुवक्किल वगैरह आते हैं, या वकील साहब यों ही मक्खियां मारते रहते हैं?"

मुंशी ने अपनी ऐनक संभालते हुए मिनमिनाकर कहा, "खूब काम आ रहा है जी! वकील साहब बस जरा तवज्जो दें तो···"

राजेश ने मुंशी को वाक्य पूरा नही करने दिया और ठहाका लगाकर बोला, "गोया आपके पास लोग अपना बटाढार कराने पहुंचने ही लगे!"

"और क्या तुम्हारा खयाल है, मैंने काला कोट शौक मे पहना हुआ है?" मैंने राजेश को ललकारा।

"गनीमत है, आपके पास काम आने लगा, वर्ना ज्यादातर वकील तो मक्खिया ही मारते हैं! मैं तो यही देखता हू कि हर साल कचहरी के अहाते मे दस-पाच झोपड़िया बढती ही चली जाती हैं। कभी उधर से निकलना पड़ता है तो सिर भन्ना जाता है। इस शहर के कॉलिज से सौ-डेढ सौ 'लॉ ग्रेजुएट' हर बरस निकलते हैं और कचहरी में तख्त डाल लेते है।" राजेश अपनी बात कहते-कहते एक क्षण ठहरा और फिर मेरी ओर अगुली उठाकर बोला, "देख लेना, एक दिन तुम लोगों की हालत भी रिक्शे-तागेवालों से ज्यादा बदतर हो जाएगी। जिस तरह वह स्टेशन पर सवारियो को अपनी तरफ खीचने के लिए गरेबान खीचते हैं, उसी अन्दाज मे तुम भी मुवक्किलो को झटकने के चक्कर मे एक-दूसरे के कोट फाडा करोगे!"

उसने वकीलों की जो तस्वीर खीची, उससे मुझे अनायास हसी आ गयी। मैंने कहा, "तुम्हारी बात मे काफी दम है! वकीलों की हालत हर रोज पतली होती जा रही है। कई वकीलो ने तो हिन्दी-अग्रेजी की टाइप मशीनें रख छोड़ी हैं। बेचारे इस्तगासों की नकलें टाइप करके दस-बीस रुपये पीट लेते हैं। उनके काले कोटों की हालत यह हो गयी है कि कुछ तो गूदड़-पा लटक [illegible] हैं!"

राजेश को मेरी बात सुनकर बहुत हसी आयी, केसरी नारायण भी हस पडे। राजेश उठते हुए बोला, "अच्छा अब उठो, वर्ना बाहर जाना रह जाएगा।"

मैंने मुंशी को सारी स्थिति समझाई, तथा राजेश और केसरी के साथ चल दिया।

हम तीनो जब राजेश के घर पहुंचे तो मैंने देखा, राजेश के पापा दफ्तर जाने के लिए सीढ़ियों से उतर रहे थे। वे हम लोगों को देखकर बोले, "मैंने गाडी तुम लोगों के लिए छोड़ दी है, मैं रिक्शा ले लूगा।" मैंने उन्हें नमस्कार किया तो उन्होंने व्यस्तता से हाथ हिलाया और तेजी से गली मे चलने लगे।

मैं और केसरी नारायण कमरे मे जाकर बैठ गये। राजेश तैयार होने के लिए घर के अन्दर चला गया। मैं केसरी को कमरे मे छोड़कर बाहर खुले सहन की तरफ निकल गया। पांच-सात मिनट बाद राजेश मुझे खोजता आया और बोला, "यहां क्या कर रहा है? चल, अन्दर चल!"

उसके साथ मैं कमरे में लौट आया। केसरी कुर्सी पर बैठा 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के पन्ने पलट रहा था। राजेश मुझसे बोला, "बस मम्मी और मीनू को तैयार होने में कुछ मिनट लग रहे हैं, हम लोग दस-पन्द्रह मिनट मे चल देंगे।"

मुझे यह सुनकर अचरज हुआ कि हम लोगों के साथ मीनू और राजेश की माताजी भी गांव जा रही हैं। जब राजेश मेरे पास गया था तो उसने उन लोगों को साथ ले जाने का कोई सकेत नही दिया था।

मैं अभी सोच ही रहा था कि मीनू नीले रग की एक नफीस साड़ी पहने हुए कमरे में दाखिल हुई। उसकी लम्बी छरहरी गोरी देह हठात् अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। बड़ी-बड़ी गहरी-काली आखों में काजल की हल्की छुअन थी, और मस्तक पर नीले रग की पान की शक्ल वाली बिन्दी थी। मैं एक क्षण के लिए बेखुदी मे उसे टकटकी लगाकर देखता रहा। अकस्मात् केसरी की आंखें भी पत्रिका के पन्नों से हटकर मीनू के चेहरे पर केन्द्रित हो गयी। शायद मीनू ने हम दोनो की आखो से बचने का एकमात्र रास्ता यही समझा कि वह कमरे से बाहर चली जाए, वह कदम बढ़ाते हुए बाहर बरामदे की तरफ निकल गयी।

कुछ देर बाद राजेश की माताजी भी कमरे मे आ गयी। मुझे देखकर

उनके चेहरे पर आत्मीयता उमड आयी और वह मुस्कराकर बोली, "राजू ने इस दफा तुम्हे बहुत परेशान किया। बार-बार इसका आना टलता ही रहा! मीनू बता रही थी कि एक रात तो तुम्हें बारिश में भीगते जाना पड़ा…।"

दो मिनट बाद राजेश भी हाथ मे चमड़े का एक बैग उठाये हुए आ गया और अपनी माताजी की बात का जवाब देते हुए बोला, "इन्तजार का भी एक सुख होता है ममी !"

राजेश के ये शब्द मेरी धड़कनों मे बज उठे। मीनू ने भी उस शाम ये ही शब्द कहे थे, लेकिन वह तत्काल ही प्रसंग को हसी मे उडा गयी थी।

मैंने राजेश की बात पर कोई टिप्पणी नही की। सब लोग कमरे से निकलकर बाहर आ गये। दरवाजे के सामने फियेटकार खडी थी। वह केसरी से बोला, "तुम गाडी से चलो, मीनू और ममी तुम्हारे साथ रहेंगी। मैं और अखिल मोटर-साइकिल से चले जाएंगे।"

राजेश की इस तजवीज को सुनकर केसरी ने तत्परता से 'ओ० के०' कहा, लेकिन मैं एकदम बुझ गया। यदि मीनू भी इस अभियान मे साथ जा रही है, तो उसके साथ न जाना, मेरे लिए यह 'आऊटिंग' एक कडी सजा थी। मैंने राजेश के इस प्रस्ताव की प्रतिक्रिया मीनू के चेहरे पर खोजने की कोशिश की, पर वहां एक ताजगी के अलावा मेरी आंखों की पकड़ मे कुछ नही आया।

"अच्छा तो कारवां बढ़ाओ। मीनू तुम गाडी स्टार्ट करो!" कहकर राजेश मुझसे बोला, "कम एलांग ओल्ड बॉय—हम लोग थोड़ी देर बाद चलेंगे, इन लोगो को चलने दो!"

दीनानाथ कमरे से राजेश का बैग उठाकर लाया और उसे कार में रख दिया। मीनू ने गाडी स्टार्ट कर दी। केसरी उसकी बगल मे बैठा था और राजेश की माताजी पिछली सीट पर अकेली बैठी थी। मेरे लिए यह एक अकल्पनीय स्थिति थी। मेरा सिर उड़ रहा था और पांव जमीन पर चिपक-से गये थे।

राजेश मेरी बाह खीचते हुए बोला, "हरी अप अखिल, एक मिनट बाद हम भी चल रहे हैं, चलो, कमरे मे एक सेकिंड के लिए।"

मैं मन्त्रविद्ध-जैसा उसके पीछे चल दिया। कमरे मे पहुंचकर उसने ह्विस्की का एक पौवा अपने कोट की जेब से निकालकर कहा, "जरा-जरा-सी गले मे डाल लेंगे, वर्ना मोटर-साइकिल पर हवा ऐसी-की-तैसी कर देगी!"

इसके बाद उसने पौवे की कॉर्क ऐंठकर कड़का दी और ढक्कन खोलकर पौवे को यों ही मुह से लगाकर आधी ह्विस्की गटक गया। इसके बाद उसने पौवा मेरे हाथ में देकर कहा, "गले मे डाल लो, रास्ते मे राहत देगा।"

मैंने पौवा उसके हाथ से लेकर मेज पर रख दिया और बोला, "इसके बगैर भी दुनिया मे लोग जिन्दा रहते है। मेरी राहत की फिक्र न करो, अभी इससे मेरा रिश्ता नही जुड़ा है!"

राजेश ने भौंहें चढ़ाकर मेरी ओर देखा और बोला, "साले, रहोगे वही धोती परसाद, तुम क्या खाक वकालत करोगे? पीने से परहेज करते रहोगे तो चल ली तुम्हारी प्रैक्टिस।" और यह कहने के साथ ही उसने पौवे की कॉर्क हटाकर बाकी बची ह्विस्की अपने गले में उडेल ली।

'कम एलांग', कहकर राजेश चल दिया। मेरा मन न जाने क्यों यकायक क्षुब्ध हो उठा, पर मैंने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की और उसके आदेशानुसार मोटर-साइकिल के पीछे बैठ गया।

शहर की सड़कों से बाहर निकलते ही राजेश ने मोटर-साइकिल की स्पीड बढा दी। सड़क दूर-दूर तक खाली पडी थी, कही कोई बाधा न देखकर वह स्पीड बढाता चला गया। मेरे लिए उतनी तेज गति मे आखें खोलकर बैठना सम्भव नही रहा।

थोडी देर में राजेश ने मीनू की कार पीछे छोड़ दी। अब मैं अपने मन मे अजीब-से विचार घुमडते हुए अनुभव करने लगा। यद्यपि मैं राजेश के साथ था, लेकिन मेरी सम्पूर्ण चेतना मीनू के कार्य-कलाप मे उलझी थी। वह केसरी की बगल में बैठी, ड्राइव करते समय क्या [illegible] रही होगी, इसकी मुझे कोई स्पष्ट कल्पना नही थी, पर मैं अपने ईर्ष्या की भयकर अग्नि भडकते हुए [illegible] था।

फौजी छावनी शुरू हो गयी।

उनके चेहरे पर आत्मीयता उमड़ आयी और वह मुस्कराकर बोली, "राजू ने इस दफा तुम्हे बहुत परेशान किया। बार-बार इसका आना टलता ही रहा ! मीनू बता रही थी कि एक रात तो तुम्हे बारिश में भीगते आना पड़ा...।"

दो मिनट बाद राजेश भी हाथ मे चमड़े का एक बैंग उठाये हुए आ गया और अपनी माताजी की बात का जवाब देते हुए बोला, "इन्तजार का भी एक सुख होता है ममी !"

राजेश के ये शब्द मेरी धड़कनों में बज उठे। मीनू ने भी उस शाम ये ही शब्द कहे थे, लेकिन वह तत्काल ही प्रसंग को हसी मे उडा गयी थी।

मैंने राजेश की बात पर कोई टिप्पणी नही की। सब लोग कमरे से निकलकर बाहर आ गये। दरवाजे के सामने फियेटकार खड़ी थी। वह केसरी से बोला, "तुम गाड़ी से चलो, मीनू और ममी तुम्हारे साथ रहेंगी। मैं और अखिल मोटर-साइकिल से चले जाएगे।"

राजेश की इस तजवीज को सुनकर केसरी ने तत्परता से 'ओ० के०' कहा, लेकिन मैं एकदम बुझ गया। यदि मीनू भी इस अभियान मे साथ जा रही है, तो उसके साथ न जाना, मेरे लिए यह 'आऊटिंग' एक कड़ी सजा थी। मैंने राजेश के इस प्रस्ताव की प्रतिक्रिया मीनू के चेहरे पर खोजने की कोशिश की, पर वहा एक ताजगी के अलावा मेरी आखों की पकड मे कुछ नही आया।

"अच्छा तो कारवां बढाओ। मीनू तुम गाड़ी स्टार्ट करो !" कहकर राजेश मुझसे बोला, "कम एलाग ओल्ड बॉय—हम लोग थोडी देर बाद चलेंगे, इन लोगो को चलने दो !"

दीनानाथ कमरे से राजेश का बैग उठाकर लाया और उसे कार में रख दिया। मीनू ने गाडी स्टार्ट कर दी। केसरी उसकी बगल मे बैठा था और राजेश की माताजी पिछली सीट पर अकेली बैठी थी। मेरे लिए यह एक अकल्पनीय स्थिति थी। मेरा सिर उड़ रहा था और पाव जमीन पर चिपक-से गये थे।

राजेश मेरी बाह खीचते हुए बोला, "हरी अप अखिल, एक मिनट बाद हम भी चल रहे हैं, चलो, कमरे मे एक सेकिड के लिए।"

मैं मन्त्रविद्ध-जैसा उसके पीछे चल दिया। कमरे मे पहुंचकर उसने ह्विस्की का एक पौवा अपने कोट की जेब से निकालकर कहा, "जरा-जरा-सी गले मे डाल लेंगे, वर्ना मोटर-साइकिल पर हवा ऐसी-की-तैसी कर देगी !"

इसके बाद उसने पौवे की कॉर्क ऐंठकर कड़का दी और ढक्कन खोल-कर पौवे को यों ही मुह से लगाकर आधी ह्विस्की गटक गया। इसके बाद उसने पौवा मेरे हाथ मे देकर कहा, "गले मे डाल लो, रास्ते में राहत देगा।"

मैंने पौवा उसके हाथ से लेकर मेज पर रख दिया और बोला, "इसके बगैर भी दुनिया मे लोग जिन्दा रहते हैं। मेरी राहत की फिक्र न करो, अभी इससे मेरा रिश्ता नही जुड़ा है !"

राजेश ने भौंहें चढाकर मेरी ओर देखा और बोला, "साले, रहोगे वही घोंती परसाद, तुम क्या खाक वकालत करोगे ? पीने से परहेज करते रहोगे तो चल ली तुम्हारी प्रैक्टिस।" और यह कहने के साथ ही उसने पौवे की कॉर्क हटाकर बाकी बची ह्विस्की अपने गले में उडेल ली।

'कम एलाग', कहकर राजेश चल दिया। मेरा मन न जाने क्यों यकायक क्षुब्ध हो उठा, पर मैंने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की और उसके आदेशानुसार मोटर-साइकिल के पीछे बैठ गया।

शहर की सड़कों से बाहर निकलते ही राजेश ने मोटर-साइकिल की स्पीड बढा दी। सड़क दूर-दूर तक खाली पड़ी थी, कही कोई बाधा न देखकर वह स्पीड बढाता चला गया। मेरे लिए उतनी तेज गति मे आखें खोलकर बैठना सम्भव नही रहा।

थोड़ी देर मे राजेश ने मीनू की कार पीछे छोड दी। अब मैं अपने मन मे अजीब-से विचार घुमडते हुए अनुभव करने लगा। यद्यपि मैं राजेश के साथ था, लेकिन मेरी सम्पूर्ण चेतना मीनू के कार्य-कलाप में उलझी थी। वह केसरी की बगल में बैठी, ड्राइव करते समय क्या वार्तालाप कर रही होगी, इसकी मुझे कोई स्पष्ट कल्पना नही थी, पर मैं अपने हृदय में ईर्ष्या की भयंकर अग्नि भडकते हुए महसूस कर रहा था।

फौजी छावनी शुरू हो गयी। सड़क के दोनो तरफ बैरकें थीं और

उनके पीछे दूर तक पहाडी सिलसिला चला गया था। पहाड़ों की तलहटी मे ऊंची-ऊची सपाट-सी दीवारें दिखाई पड रही थीं, जिनके सामने फौजी अपने हाथों मे बन्दूक ताने खड़े थे। शायद वे रेत के बोरों मे गोलियां मारकर निशानेबाजी का अभ्यास कर रहे थे।

छावनी के अन्त पर पहुचकर राजेश ने मोटर-साइकिल रोक दी। उसका ठहरना मेरी समझ मे नही आया, लेकिन मैं भी उसके साथ ही उतरकर सडक के किनारे खडा हो गया। कुछ मिनट बाद मीनू भी अपनी गाड़ी लेकर वहा पहुच गयी और उसने गाडी रोक दी। मीनू और राजेश की माताजी के साथ केसरी भी कार से निकलकर बाहर आ गया तो राजेश उनसे बोला, "तुम लोग दो-ढाई घटे मे आ जाना!"

मीनू ने नजरें बचाते हुए मेरी ओर देखा और फौजी बैरको की दिशा में बढ़ने लगी। उसकी मा और केसरी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये।

उनके जाते ही राजेश ने भी मोटर-साइकिल स्टार्ट कर दी। मैं राजेश से बिना कुछ कहे-सुने उसकी सीट के पीछे बैठ गया। मोटर-साइकिल का इस तरह ठहरना और मीनू का वहा रुकना, और कार को वहीं सड़क पर छोडकर मीनू तथा केसरी वगैरह का बैरको मे ओझल हो जाना, मेरे लिए एक अबूझ पहेली जैसा था, परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ पूछने का मेरे लिए सवाल ही कहां उठता था! अगर मेरी मन.स्थिति सहज होती तो मैं इस सबको लेकर कोई जिज्ञासा भी व्यक्त कर सकता था, पर मेरी कुढन ने मुझे कुछ नही पूछने दिया। मैंने मन-ही-मन खीझकर कहा, "सब जहन्नुम मे जाओ!" 'जो भी होता है, होता रहे' की भावना से भर-कर मैं आखें बन्द किये राजेश के पीछे बैठा रहा।

छावनी कब की पीछे छूट चुकी थी, और अब दूर-दूर तक निचाट सुनसान इलाका था। नदी-नाले, पुलों के उठान और ढलवानों को पार करके हम लोग अब मुख्य सडक से हट गये थे।

एक खपरैलो वाले टपरे के सामने पहुचकर राजेश ने मोटर-साइकिल रोक दी। मैंने इधर-उधर घूमकर देखा। कच्ची पगडडियों के इधर-उधर फूस की सैकडों झोपडिया थी। उन झोंपडियो की ऊचाई किसी भी तरह आदमी की लम्बाई के बराबर नही थी। उनमें रहने वाले ज्यादा-से-ज्यादा

बैठ या लेट सकते होंगे, पूरी लम्बाई मे खड़े होना तो प्रायः असम्भव ही था। कच्ची-पतली दीवारों की उन झोंपड-पट्टियों के द्वारों पर अजीब रग-बिरगे स्वास्तिक चिह्न बने थे, और दीवारों पर सफेद खड़िया का लेपन था। उन सकेतों से उन गरीब निवासियों की कलात्मक रुचियों का पता चलता था।

इन झोंपड-पट्टियों के पीछे चारो ओर हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। इन झोपडियो के मध्य कुछ छप्पर के ऊचे टपरे भी मौजूद थे, जिनके बाहर पुरानी सड़ी-गली बेंचें तथा मेजें पड़ी थी। दो स्थानों पर भट्ठियां भी सुलग रही थी और उन पर चाय की निहायत मैली, धुआखोर केतलियो में पानी उबल रहा था। एक तरफ पुराने-फटे टायर-ट्यूब फैले पड़े थे, शायद साइकिलों के पचर जोडनेवाला कोई मिस्त्री रोजी-रोटी के जगह मे उधर आकर जम गया था। यहा से जब-तब मोटर और ट्रक भी शायद गुजरती हों, क्योकि मेजों और बेंचो पर धूल की मोटी तहें दिखलाई पड़ रही थी।

चाय-घर, ढाबा या रेस्टोरेन्ट, जो भी उसे कहो, वहा फटे-पुराने गलीज तथा महाचीकट कपड़े लटकाये ग्राहक भी जुटे हुए थे। तेल की, न जाने कितनी देर पहले तली हुई, बासी पकौडियां और जलेबी पीतल की लम्बी-चौडी परातो में, मक्खियों और मनुष्यों के लिए समान आकर्षण उत्पन्न कर रही थी।

आम रास्ता छोडकर एक पतली-सी डगर पर मुड़कर मैंने पाया कि वह छोटा गाव या नगला, आम हिन्दुस्तानी गावों की तरह ही जर्जर था। हर घर के सामने चहबच्चे और डबरे बने हुए थे। राजेश मुझसे आगे-आगे चल रहा था। वह एक पक्के और दो मजिले मकान के सामने जाकर खड़ा हो गया, और मोटर-साइकिल एक तरफ खड़ी करके मकान के चबूतरे पर चढते हुए भारी आवाज मे चिल्लाया, "ओ पडतजी महाराज, ओ महाराजजी, किधर हो गुरुजी ?"···

राजेश की गुहार सुनते ही अधेड उम्र का एक आदमी न जाने किधर से दौड़ता हुआ आया, और हम दोनो के सामने खीसें निपोरते हुए हाथ जोडकर खड़ा हो गया। उसने हाथ से सिले हुए मारकीन के गलीज बनियान को पेट के ऊपर उठाया और जनेऊ खीचकर उसकी गाठ मे बंधी

चाभी निकालकर राजेश के हाथ में थमा दी। राजेश ने चाभी उलट-पलट कर फिर उसी के हाथ में देते हुए कहा, "ताला खोलो !"

मैं समझ गया, यह वही 'कन्ट्री हाउस' है, जिसके बारे में मैं राजेश तथा उसके परिवार के लोगों से बहुत कुछ सुनता आ रहा था। यह मकान गवई-देहातियों के लिए एक रहस्य-जैसा था जो साल दो साल में कभी एक-दो दिनों के लिए खुलता था। जमीन के मालिक लोग वसूली करने अथवा मौज करने आते थे। यह राजेश के बाबा के जमाने में कभी बना था, और वे यहां रहकर स्वयं खेती करवाते थे। उन्होंने शहर भेजकर राजेश के पिता को पढ़ाया-लिखाया और बैंक में नौकरी दिलवा दी। अब राजेश के पिता बैंक के मैनेजर थे। वे अच्छी-खासी मोटी तनख्वाह पाते थे। इतने वर्षों में उन्होंने शहर में अपना एक बढ़िया बगला और साथ ही और भी जायदाद बना ली थी। राजेश को एयर फोर्स भेज दिया था और वह 'विंग कमांडर' के पद पर पहुंच गया था।

गांव-देहात की जमीन शिकमी काश्तकार जोतते-बोते थे। राजेश का गुमाश्ता मकान के पिछले हिस्से में अपने बाल-बच्चों के साथ रहता था। जिस आदमी को पंडतजी महाराज कहकर बुलाया गया था, वही इस जमीन की देखरेख करता था।

पंडित ने राजेश के हाथ से चाभी लेकर उस पुराने ढंग के सामन्ती मकान का ताला खोल दिया। कोठी का भीतरी भाग बहुत पुराना होने पर भी काफी साफ-सुथरा था। एक बड़े-से दीवानखाने में मचनुमा एक पक्का चबूतरा भी बना हुआ था, जिस पर जाजिम और गलीचे बिछे हुए थे और मोटे-मोटे गावतकिये पड़े थे। दीवारों पर फ्रेमों में मढ़ी आदमकद कई तस्वीरें लगी थीं, जो निश्चय ही किसी पेन्टर की बनाई हुई थीं।

हॉल के बीचोबीच एक लम्बी-चौड़ी 'डाइनिंग टेबिल' और उसके इर्द-गिर्द आठ-दस ऊंची पीठ वाली कुर्सियां भी लगी हुई थीं। उन मेज-कुर्सियों को देखने से लगता था कि वे ज्यादा पुरानी नहीं थीं। शायद यह फर्नीचर साल-दो साल पहले ही यहां डलवाया गया होगा। यह भी हो सकता है, राजेश के पिता बैंक से सम्बन्ध रखनेवाले बड़े व्यापारियों को यहां जब-तब लाते हों और व्यावसायिक सौदे तय करते हों !

कोठी मे यों तो बहुत-से कमरे थे, मगर कारिन्दे ने सिर्फ दो ही कमरे खोले। ऊपर की मंजिल में जाने के लिए जीना था, जिसके दरवाजे पर एक बड़ा-सा लोहे का जंगखाया ताला लटक रहा था।

पंडित ने एक आलमारी खोलकर कांच के रंगीन गिलास और ह्विस्की की बोतल निकालकर 'डाइनिंग टेबिल' पर लाकर रख दी। मैं उस लम्बे-चौड़े हॉल मे इधर-उधर घूम-फिरकर दीवारों पर लगी तस्वीरें देखने लगा। राजेश एक जंगले के पास जाकर खड़ा हो गया और उसने सिगरेट जला ली। जब मैं तस्वीरें देखकर ऊब गया तो मैं भी राजेश के नजदीक जाकर खड़ा हो गया और बाहर का दृश्य देखने लगा।

सिगरेट खत्म करके राजेश डाइनिंग टेबिल के पास पड़ी कुर्सी खींच-कर बैठते हुए बोला, "आओ अखिल, जब तक ये लोग आयें, हम लोग कुछ शगल ही करें!" हालांकि मेरे लिए उस मुतहे मकान में दिलचस्पी का कोई सामान नही था, लेकिन मैं बगैर कुछ बोले राजेश के पास जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

राजेश ने बोतल की सील तोड़कर दो गिलासों में शराब डाली और पंडित का इन्तजार करने लगा। थोड़ी देर में ही कारिन्दा पानी का जग और गर्म-गर्म पकौड़ियां लेकर आ गया। राजेश का इशारा पाकर उसने पकौड़ियों की प्लेट तथा पानीभरा जग मेज पर, ठीक हम दोनों के सामने रख दिया।

राजेश ने गिलासों मे पानी डाला और एक गिलास मेरी तरफ बढ़ा-कर बोला, "चियर्स!"

मैंने गिलास छुआ भी नहीं और प्लेट से पकौड़ी उठाते हुए बोला, "मुझे भूख लगी है, प्यास नहीं है। मैंने तो तुम्हें दोपहर ही बतला दिया था कि अभी यह जालिम मेरे मुंह नहीं लगी है!"

मुझे गिलास की तरफ से विरक्त देखकर राजेश का मुंह उतर गया और वह परेशान-सा होकर बोला, "यार, क्या कमाल करते हो! शहर से सत्तर मील दूर क्या हम लोग झख मारने आये हैं? आज एक घूंट मेरे साथ पी लेते तो क्या तुम्हारी बिरादरी मारी जाती? पीने का इसरार करने मैं रोज-रोज तो आने से रहा!"

मुझे राजेश के इस अनुरोध ने कहीं से नहीं छुआ। मैं जिन परिस्थितियों और संस्कारों में बड़ा हुआ था वहां शराब न केवल अनावश्यक समझी जाती थी, बल्कि विकृति और अपराध की जननी भी समझी जाती थी।

मैंने हंसकर उसे टाल दिया, "यार, क्यों बेकार जिद कर रहा है! अभी मैं अच्छा-खासा आदमी हूं, इसे पीकर हैवान बन जाऊंगा। तुम साले संभाल भी नहीं पाओगे, तमाशा अलग बनेगा!"

इसके बाद राजेश ने आग्रह नहीं किया। मैं काफी भूख अनुभव कर रहा था। सहसा मुझे याद आया कि मैं आज सुबह से कुछ खाया भी नहीं था। मैंने गर्म पकौड़ियों से पेट भर लिया, और पानी पीकर कुर्सी की पीठ से सिर लगाकर आराम से पसरकर बैठ गया।

पता नहीं कितना समय गुजरा होगा कि एक भनभनाहट-सी मेरे कानों से टकराने लगी। मैंने आलस्य में डूबी अपनी आंखें खोलकर एक विचित्र दृश्य देखा। पहली बार तो मैं कुछ समझ ही नहीं पाया, क्योंकि मैं नींद की झोंक में था; पर मेरे सामने कुछ लोग हरकतें कर रहे थे, जिन्हें सपना समझकर नकारना असम्भव था।

कितने ही फटेहाल देहाती अपनी टोपियां जमीन पर डाले और हाथ बांधे खड़े थे। उनके चेहरों पर डर से हवाइयां उड़ रही थीं। उन सबकी शक्लें लगभग एक-जैसी ही थीं। उनकी निराश तथा भयभीत आंखों में लुट-पिट जाने का डर समाया हुआ था।

राजेश उन्हें बुरी तरह डांट-फटकार रहा था। मेरे लिए यह एक अकल्पनीय दृश्य था। मेरा दोस्त राजेश, जो बचपन से मेरा सहपाठी था, साथ ही बढ़कर युवक हुआ था और अब सेना में एक जिम्मेदार अफसर था, इन गरीब काश्तकारों को क्यों फटकार रहा था?

मैं अभी वास्तविकता को जानने-समझने की कोशिश ही कर रहा था कि राजेश कुर्सी से उठकर उन देहातियों के नजदीक जा पहुंचा। वे सब डर और अदब से सिर झुकाये खड़े थे। पता नहीं उन बेचारों की क्या-क्या उम्रें होंगी, देखने में तो वे सब इतने कमजोर और अधेड़ लगते थे, जैसे जवानी कभी उनके पास आकर फटकी ही न हो! राजेश का चेहरा

अगारे-जैसा लाल हो गया था। कुछ तो शराब की गर्मी और कुछ गुस्सा, दोनों मिलकर उसके चेहरे को बीभत्स बना रहे थे। वह उन्हें भद्दी-भद्दी गालियां बकने लगा। मैं स्तब्ध रह गया और स्वयं से बार-बार पूछने लगा, "आखिर यह हो क्या रहा है ? मैं यहां किसलिए बैठा हू ?…"

मैंने राजेश को एक बूढ़े-से किसान के सामने खड़े देखा। राजेश उसका गला पकड़े हुए था। किसान घिघिया रहा था और राजेश उसकी बेटी का सम्बन्ध कुत्ते से जोड रहा था। मेरा मन राजेश के मुंह पर थूकने को हो आया। इसी क्षण राजेश मेरी ओर घूमकर खडा हो गया और बकने लगा, "कुत्तों से भी गये-गुजरे है हरामखोर ! कहते है, इनके पल्ले कुछ नही है ! अब इनके पास कुछ नहीं है तो हम क्या करें ? खेती करके अगर ठीक वक्त पर लगान भी नही चुका सकते, तो फिर कही और जाकर क्यों नही मरते सूअर की औलाद !"

जिस किसान की उसने थोड़ी देर पहले गर्दन दबोच रखी थी, वह राजेश के पैरों की ओर हाथ बढाकर बोला, "राजा बाबू, आप मालक हैं, पिछले दो बरस से बखत पर एक बूद नही पड़ी। अगली फसल पर सारा हिसाब कर देंगे, इन गरीबन को छिमा करो !"

राजेश ने उस गरीब को ठोकर मारकर कहा, "हां-हां, अगली बार तो आसमान से हुन बरसने लगेगा। झांसा किसी और को देना, मैं इस बार ही सारा हिसाब साफ करके जाऊंगा ! तुम लोगों ने पूरा बकाया नही चुकाया, तो मैं एक को भी जमीन पर नही रहने दूगा।"…

मैं किसानों की दयनीय स्थिति देखने के बाद भी कुछ कर सकने की स्थिति में नही था, और न राजेश के तर्कों पर कोई टिप्पणी कर पा रहा था। मेरी आखों में एक भयकर दृश्य उभर रहा था। जैसे सारे फटेहाल किसानों को एक के ऊपर रखकर कटी फसल के पूलों की तरह चुन दिया गया हो, और ऊपर के आदमी के पेट में बरमे से सूराख किया जा रहा हो। बरमा इतना लम्बा था कि वह सबसे नीचे लेटे आदमी के पेट तक भी पहुंच रहा था। इसी वक्त राजेश ने एक लम्बा-चौडा बर्तन मंगाकर रख दिया, और ऊपरवाले किसान के पेट मे नली डालकर उसका दूसरा सिरा बर्तन में छोड़ दिया। मैंने कल्पना में देखा कि राजेश का पूरा परिवार उस

बर्तन से लाल रक्त गिलासो के जरिये निकालकर, रस ले-लेकर पी रहा है। अचानक वह रक्तभरा बर्तन एक आलीशान बगले में बदल गया, और वहा एक-एक करके ऐश्वर्य के सारे साधन एकत्र हो गये।

मैं इस दु स्वप्न-जैसी भयावह कल्पना से एकदम हड़बड़ा उठा। मैंने अपने आसपास कुछ लोगों की आहटें सुनी। मैंने आखें खोलकर यह जानने की कोशिश की कि उन किसानों की किस्मत का क्या फैसला हुआ, जिन्हें राजेश लताड़ रहा था। लेकिन मैंने देखा कि किसान वहां से जा चुके थे और वहा मीनू, उसकी माताजी तथा केसरी खड़े बातें कर रहे थे।

मुझे मीनू के चेहरे पर भरपूर उल्लास उमडता दीख पड़ा। केसरी भी बहुत खुश लग रहा था। मुझे उन दोनों को देखकर सहज ही यह अनुमान हो गया कि उन लोगो मे खूब आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप हुआ होगा। केसरी के सम्बन्ध मे मैंने सुबह कुछ खास नही सोचा था, पर अब प्रसग मे वही प्रमुख व्यक्ति हो उठा था।

मुझे एकाएक बहुत-सी चीजें साफ नजर आने लगी, राजेश ने जान-बूझकर केसरी को मीनू के साथ भेजा था, क्योंकि केसरी के साथ जुड जाने पर मीनू का भविष्य पूर्ण सुरक्षित था। सुबह केसरी जितनी आत्मीयता दिखाकर मुझसे मिला था, इस समय उसका कहीं निशान भी बाकी नही रह गया था। अपनी जीत की खुशी में वह इतना मगन था कि उसने मेरी तरफ देखा तक नहीं।

मैंने भी किसी से कुछ नही कहा। मैं चुपचाप कुर्सी पर आत्मस्थ भाव से बैठा रहा, तो केसरी मेरे पास आकर 'हलो' कहकर कुर्सी पर बैठ गया, और उसने अपने हाथ के टिन से सिगरेट निकालकर जला ली। मैंने उसके 'हलो' का कोई उत्तर नही दिया और सधे कदमों से उठकर खिड़की के नजदीक जाकर खडा हो गया। मैंने देखा, इस मकान से थोड़ी दूर हटकर फूस की झोपडियो की कतार चली गयी थी, जिनके सामने खुली जमीन पर छोटी-छोटी क्यारिया बनी हुई थी, जिनमें मेथी, पालक, सरसों, बैंगन आदि के पौधे लहलहा रहे थे। इधर-उधर नग-धडंग बच्चे कूद-फांद मचा रहे थे। उनके बदन पर चिथड़े तक नही थे। गलियों में कई बैलगाडियां गुजर रही थी, जिनमें लम्बे-लम्बे घूंघट डाले औरतें बैठी थी। पगड़धारी

बूढ़े और जवान, बैलों को टिटकारी देते गाड़ियां हांकते चले जा रहे थे।
इसी समय मीनू केसरी के साथ मेरे पास आयी और मुझे गुमसुम तथा उदास देखकर बोली, "लगता है, आपका मूड आज बुरी तरह उखड़ा हुआ है!" यह कहकर वह मुक्त भाव से हंस पड़ी।
मैंने उसकी ओर सरसरी निगाह से देखा और मुस्कराने की चेष्टा करने लगा। मीनू केसरी से मेरा परिचय कराने लगी, जो मुझे एकदम बेतुका और अप्रासंगिक लगा। उसे अच्छी तरह मालूम था कि राजेश आज सुबह मेरे निवास-स्थान पर केसरी के साथ ही गया था, और उसने केसरी का मुझसे परिचय करा दिया था। मीनू का यह नये सिरे से केसरी का परिचय कराना, मुझे विशेष अर्थपूर्ण लगा। इससे यह प्रकट होता था कि मीनू और केसरी की घनिष्ठता इस दौरान सारी औपचारिक सीमाएं लांघ चुकी थी, और मैं मीनू के लिए एक गौण व्यक्ति हो चुका था।
मेरे कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त न करने से शायद मीनू घबरा उठी। वह केसरी को साथ लेकर चली गयी। मैंने उधर देखा तक नहीं, बराबर खिड़की के बाहर देखता रहा।
जब मैं खिड़की से हटा तो मैंने दीवानखाने में एक भी व्यक्ति को नहीं देखा। उस लम्बे-चौड़े कमरे में मैं एक फालतू आदमी था। अपने वहां होने की सार्थकता मेरी समझ में किसी भी कोण से नहीं आयी। यह पिकनिक मीनूऔर केसरी की 'कोर्टशिप' के लिए 'अरेंज' की गयी थी, और मुझे एक दर्शक की हैसितत से रगेदा गया था। हो सकता है, इसके पीछे मीनू का यह मन्तव्य हो कि मैं मीनू के प्रति घनिष्ठता के सारे दावे वापस लेकर एक बाहरी आदमी बन जाऊं।

५

गांव से लौटने का प्रोग्राम भी उसी तरह रहा। मीनू, केसरी और राजेश की मां कार से लौटे, और मैं राजेश के साथ मोटर-साइकिल पर। मैं

केसरी के साथ कुछ घण्टे रहने पर ही अनुभव कर लिया कि वह भावुकता से कोसो दूर था, और मीनू को जिन्दगी का थ्रिल देने मे पूरी तरह समर्थ था। मैंने अपने मन मे ही स्वीकार कर लिया कि मुझे आगे बढने का अब कोई हठ नही करना चाहिए। राजेश और उसकी माताजी भी यही चाहती थी कि मीनू और केसरी विवाह के बन्धन मे जुडकर एक हो जायें।

मेरा तन-मन टूटा हुआ था, इसलिए मैं राजेश के बहुत आग्रह करने पर भी उस रात उसके घर नही ठहरा। मीनू की मेरे प्रति इतनी गहरी तटस्थता एक ही दिन मे समाप्त हो सकती है, मैंने कभी कल्पना भी नही की थी। वह केसरी से जुड रही थी, शायद यह मेरे लिए उतना कष्टप्रद नही था, लेकिन केसरी की उपस्थिति मे उसने मेरा जितना मूक तिरस्कार किया था, वह मेरे लिए पूरी तरह असह्य था। शायद वह इस तरफ से बेखबर नही थी कि मेरी जीवन-गति का प्रत्येक कर्म मीनू के व्यवहार से प्रभावित होता था, और वही मीनू अब एक दिन मे परायी हो गयी थी। उसे देखे बिना मैं रह नही सकता था, और अब उसके निकट पहुंचने की सम्मानजनक स्थिति भी बाकी नही रह गयी थी। मैं बार-बार लौट-फिर-कर एक ही बात सोचता था कि यदि मैं उसके लिए इतना फालतू था, तो उसने मुझे इतना आगे बढने को उकसाया क्यो था ?

मैं फिर उस तरफ जाकर भी नही झाका। मुझे यह भी पता नही चल पाया कि राजेश अगले दिन ही लौट गया या कुछ दिन केसरी के साथ अपने घर मे ठहरा। मेरा मन घर मे एक पल के लिए भी नही लगता था। पाव अनजाने मे मीनू के घर की तरफ बढने लगते थे, जिन्हें मैं जबरदस्ती ठेल-ठालकर उधर जाने से बरजता था।

जिस समय मैं मीनू को देखने के लिए विकल था और अपने आत्म-सम्मान को ठोकर मारकर उससे मिलने जाने की सोच ही रहा था, तभी मैंने खिड़की से देखा कि सडक पर देहाती लिबास मे मेरे चाचा चले आ रहे हैं। मैने लपककर किवाड खोले। चाचा का इस तरह एकाएक आना मेरे लिए अकल्पित था। मेरा माथा ठनका, इस समय ये क्यो आये हैं ? घर मे कोई दुर्घटना तो नही हो गयी ?···

चाचा एक क्षण द्वार हम ठहरे और फिर झिझकते हुए भीतर आ गये। उनके हाथों में मैले-कुचैले दो झोले थे। ये झोले घर में गुड़, बिनौले, खली आदि रखने के काम में आते थे। एक झोले में उनके कपड़े ठुंसे हुए थे जो झोले से बाहर तक निकल रहे थे। दूसरे झोले में ऊपर ही एक पोटली थी, जिसमें न जाने क्या था! पोटली किसी जनानी धोती के चिथड़े की थी। चाचा की धोती घुटनों तक चढ़ी हुई थी, और उन्होंने मलगजे कुर्ते पर एक फटी-पुरानी जाकेट पहन रखी थी। गाव के मोची द्वारा बनाये गये चमरौधों पर धूल की न जाने कितनी मोटी तहें जमी हुई थीं। उन्होंने चारपाई पर बैठकर झोले अपने पांवों के निकट रख लिये और बोलने से पहले सुस्ताने लगे। मैंने रामफल, जिसे मैं रमलू कहकर पुकारता था, को आवाज दी। वह मकान के दूसरे हिस्से में रहने वाले लोगों की सेवा में जुटा था। मेरी पुकार सुनकर वह आया तो मैंने उसे एक गिलास पानी लाने को कहा। वह एक क्षण अचरज में बिस्तर पर बैठे व्यक्ति को देखता रहा, शायद वह निश्चय नहीं कर पाया कि कोई ऐसा देहाती आदमी निःसंकोच मेरे बिस्तर पर इत्मीनान से बैठ सकता है। रमलू पानी का गिलास चाचा के हाथ में दे गया। उन्होंने गटागट पानी पिया और गिलास फर्श पर एक हल्की-सी ध्वनि के साथ टिका दिया।

इसके बाद उन्होंने एक थैले से पीतल की लुटिया निकाली, साथ ही एक पीतल का ही कटोरदान भी निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया। मैंने बगैर उत्सुकता के उसे लेकर मेज पर रख दिया। मैं जानता था कि उसमें वे गांव में खाने का कुछ सामान, खास तौर से मेरे लिए बनवाकर लाये हैं।

चाचा ने थैलों पर झुककर उनमें से मदारी की तरह सामान निकालना शुरू कर दिया और एक-एक सामान को अलग-अलग फर्श पर रखने लगे। एक थैले से कुर्ता, धोती, गंजी आदि निकालकर मेरे हाथ में दे दी और बोले, "गाम से चलते टेम कपरा मूसे नाम हते, इन्हें अरगनी पर नेक फरेरे होने को डार दीजो आईल!"

मैंने उनके कपड़े खिड़की के पल्लों पर, सूखने के लिए डाल दिये। सबके बाद जो पोटली झोले की तली से निकली, उसे मेरी ओर बढ़ाते हुए

बोले, "तेरी चाची ने तेरे लइया बेसन के लड्डुआ बनाय दये हैं !" इसके पश्चात् उन्होंने खाली झोलों को एक खूटी के हवाले करके कहा, "नेक मैं हनाय लऊं। सारे दिना की धूल-धक्कर ते मेरो तो सिर ही घूम गयो बेटा ! सफ्‌ड़ भोत बुरी चीज है, गुसरखानो कितकू है, बतइयो !"

इतनी भयकर सर्दीली शाम मे उनके नहाने का प्रस्ताव सुनकर मैं दहल उठा। पर विवशता थी, वे नहाये बिना मानने वाले नही थे, और गर्म पानी से कभी नहाते नही थे।

जब वे स्नान करके लौटे तो रात पूरी तरह घिर आयी थी। कपड़े पहनकर उन्होंने मेरे बिस्तर के सिरहाने पड़े शाल को ओढ लिया और पालथी लगाकर बिस्तर पर बैठते हुए बोले, "अब नेक चैन परी है !" मुझे चुपचाप देखकर उन्होने मेरे चेहरे-मोहरे पर गौर किया, "का कछू बीमार-सीमार है ? तेरो मौंह च्यों सूख रयो है लल्ला ? मोय लगे है, बजार को खावत-पीवत है ! अपने सग गाम ते एक छोरी को ले आ रोटी-पानी को ठीक इतजाम है जायगो !"

"हा, यही करना पड़ेगा" मैंने विवाद से बचने के लिए कहा, पर साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया, "मैं बजार मे खाना नही खाता। हम लोगों ने एक नौकर रख लिया है, वही खाना बना देता है।" मेरी बात पर उन्होने हवा मे हाथ लहराकर प्रतिवाद किया, "अरे, नौकर कहा खानो बनाय सके, मरद-मानुस के बस को नाय ई काम !" इसके बाद वे असली उद्देश्य पर आ गये, "रामकली (मेरी छोटी बहन) को देखनवारे आय रहे हैं, लडका दसवी लों पढ्‌यो है, काई दुकान पै काम करत है !"

चाचा के शब्दों ने मेरी चेतना पर हथौड़े का काम किया। मेरी सगी बहन का पति बनने के लिए किसी दूकान पर मामूली-सी चाकरी करने-वाला आदमी ही इस दुनिया मे एकमात्र उपयुक्त वर रह गया है ? रामकली का दिन-प्रतिदिन कमजोर होता चेहरा मेरी आखो मे घूम गया। उम्र अभी बाईस की भी मुश्किल से ही होगी, मगर गांव-देहात मे लडकी का इस उम्र मे कुमारी रहना किसी को सहन नही होता। गांव की बूढी औरतें और रिश्ते-नाते के लोग रामकली की उम्र को लेकर ऐसी उल्टी-सीधी अटकलें लगाने लगे थे, गोया वह सदिया पार किये बैठी हो।

रामकली के साथ की लड़कियों का बरसों पहले विवाह हो चुका था और वे सब बाल-बच्चेवाली गृहस्थिनें थीं। जब वे गांव में आती थीं तो छिपे तौर पर यह संकेत अवश्य करती थीं कि रामकली का अब कभी विवाह नहीं हो पायेगा। मेरी बहन इसी रुग्ण मानसिकता में सूखती चली जा रही थी।

मुझे चाचा पर अकारण ही क्रोध आने लगा। जिस लड़के को चाचा देखने आये थे, उसे सौ सवा-सौ से ज्यादा तनखाह मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। चाचा ने मुझे चुप देखकर अपनी बात आगे बढ़ाई, "लरका रामकली को देखनो चाहवे है!" चाचा के इस प्रस्ताव पर मैं बौखला उठा, किन्तु मैंने अपने रोष पर नियंत्रण करके पूछा, "आपने उस लड़के को देखा है कभी?"

"नाय भैया, मैंने तो कबहूं नाय देखो, रमेसर फूफा को छोरा बतावत है, लरका ठीक-ठाकई है। वा लरका की पैली सादी रमेसर फूफा नेई करवाई हती!"

चाचा की बात का मतलब यह निकला कि जिस लड़के से रामकली की शादी की बात तय की जा रही है, उसकी पहली पत्नी का देहान्त हो चुका है। मैंने खलबलाते हुए पूछा, "तब तो उसकी पहली घरवाली के दो-चार बच्चे भी जरूर होंगे?"

चाचा ने मेरे रोष की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया, वे निहायत भोलेपन से बोले, "हां, पहलीवारी ते दो लरकिनी हैं बस!" फिर अपनी बात की सहजता को स्थापित करने के खयाल से बोले, "गामन में पचासन को ब्याव दुहेजून ते ही होवत चलो आवे है, यामे कोई खास बात नाय है बेटा!"

हद ही हो गयी। मैंने गम्भीर होकर कहा, "तब तो यह शादी नहीं होगी! सौ सवा-सौ रुपये पाने वाला आदमी, जिसकी पहली घरवाली से भी दो बच्चे मौजूद हैं, रामकली को सूखी रोटी तक नहीं दे पायेगा। इसके अलावा उसके परिवार में एक-दो प्राणी और भी हो सकते हैं।"

"अखील बेटा, टेम देखो अपनो! बरी मुस्कल ते मामलो पटो है। तोय पतो है, छोरी फागुन मे बाईस की है जायगी। याई भागमभाग में बखत

टलतो रहैगो तो छोरी क्वांरी बैठी रह जायगी ! अब अच्छे लरका दस-बीस हजार तो नकद मागें है, कहा ते लामें अच्छे छोरा ?"

"बाईस साल ऐसी कोई बडी उम्र नही है"—मैंने चाचा की बात का प्रतिवाद किया, जिस पर वे एकाएक भडक उठे, "तू तो सब बातन को हवा मे उड़ाय रयो है ! तेरी वकालत तो हमने देख लई, तेरो कोट-पतलून को खरचो ही यामे निकर जाय तो बडी बात समझो ! तू हमें कहा दे सकत है, उपदेस ई हैं तेरे ढिंग ! तोय पतो है, रेहन रख्यो बाग तो पै वकील है के भी ना छुटायो जा सको। तेरो बाप जिन्दो होतो तो मेरी कछू जिम्मेवारी ना हती, पर अब तो सबकी मोये सुननी परे हैं। तेरी महतारी हर बखत मेरी खाल खेंचे है —बेटी के हाथ पीरे करो, हाथ पीरे करो !"...

अपना कथन समाप्त करके वे मुझे आदेश-सा देते हुए बोले, "तो भैया अब अबार मत करो ! झटपट चलो, लरका कू अबई देखे लेत हैं" मैंने तोकू एक कारट लिखवायो हतो, का मिल्यो नाय ? मैं तोकू टेसन खोजत फिर्यो। तेरो या होटल (चाचा मेरे कमरे को होटल ही कहते थे। जहा आदमी सपरिवार न रहकर अकेला ही रहे वह उनकी दृष्टि में होटल ही था।) को पतो मेरे पास हो। कितने ई आदमीन ते पूछत-पूछत पहुंच्यौ हू भैया !"

मैंने सयत होकर पूछा, "कहां चलना है ? अब तो रात भी काफी हो गयी है, ऊपर से ठड का मौसम ठहरा !"

"अरे हुई चलनो है, लरका देखनो है के नाय ? गज मोहल्ला मे टाल के ढिंग वाको घर है। रामकली कू दिखाबे को इतजाम हुई कर रख्यो है। रमेसर फूफा के जानवारे एक जने के घर लरकी दिखाई जायगी। मैं रामकली कू ऊही तो छोर के आयो हूं। रामकली को सग लेके मैं तेरो होटल कहा ढूढतो फिरतो ! रक्सा वारे आजकल ऐसे बदमास हैं, पता नाय कहा-को-कहा लैं जावें !" चाचा ने लम्बी तफसील सुनाकर एक मैला-सा पुर्जा अपने कुर्ते की जेब से निकालकर मेरे हाथ मे थमा दिया।

मेरा मन चाचा के मुह से सारी कैफियत सुनकर एकदम खिन्न हो गया। ये मेरी बहन को भी साथ ही ले आये, और लाये भी तो सीधे मेरे पास नही, पता नही किस ऐरे-गैरे के यहा डाल आये उसे !"

स्थितियों की भयंकरता और उनके पीछे छिपी हजार-हजार विवशताएं मुझसे सम्हाली नहीं जा रही थी। मैं अपनी छोटी बहन का विवाह किसी इतने टूटे-फूटे आदमी से करने की कल्पना भी नही कर सकता था; लेकिन चाचा का कहना भी गलत नही था। मेरी वकालत, एक बैठे-ठाले बेरोजगार युवक का खेल सरीखी थी। शहर मे लम्बे समय तक राजेश के सम्भ्रान्त तथा सम्पन्न परिवार के साथ जुड़े रहने के कारण मैं अपने घर-परिवार की वास्तविकताओं को भूला हुआ था। मेरी स्थिति उस आदमी-जैसी थी, जो सोचने के स्तर पर पहाड़ की चोटी पर खड़ा हो और जीवन का कठोर यथार्थ उसे अंधी खाई में तेजी से लुढ़काता चला जा रहा हो।

लेकिन बहुत दूर तक सोचने के बाद भी मेरी हिम्मत रामकली के लिए उस वर को देखने की नहीं हुई, जो मुझे किसी भी प्रकार उसके उपयुक्त नहीं लग रहा था। मैंने अनचाहे चाचा को टालमटोल बतलाई, "मुझे कल सुबह एक खास मुकदमे में जाना है, अभी तक कागज नहीं देखे, मिसल की तैयारी में पूरी रात निकल जायेगी…"

चाचा मेरी बात सिरे से ही नहीं समझे और सहजता से बोले, "अरे तो वाले [illegible] [illegible], [illegible] घटा बाद देख लीजो, बहन को [illegible] है बेटा!"

मैंने चाचा को समझाया, "[illegible] मुश्किल दूर-दराज गावों से [illegible] अपने मुकदमे की तारीख पर आते हैं, वे उम्मीद करते हैं कि उन्होंने [illegible] वकील को [illegible] दिया है, वह बेकार न जाए। [illegible] चाहते ही हो तो [illegible], पसन्द आ जाए तो मुझे [illegible]!"

मेरी बात सुनकर चाचा निरुत्तर रह गये। उन्होंने [illegible] मैंने अपनी आंखों पर ठीकरी रख ली है, उनके और [illegible] देखने नहीं आऊंगा। वे मायूस होकर बोले, "तो [illegible] लत्ता-कपड़े [illegible] के झोला में डार, मैं चला [illegible] तो पकड़ लऊंगो!"

कपड़े समेटने को उन्होंने मेरे से [illegible] उठकर अपने कपड़े खिड़की के पल्लों से [illegible] लगे। मैं समझ रहा था कि मेरा [illegible]

पर मैं असहाय था। मेरी सगी बहन किसी नाममात्र के जानकार आदमी के घर में उपेक्षित बैठी मेरे पहुंचने का इन्तजार कर रही थी, और मैंने बचने का रास्ता निकाल लिया था। मैं अब भी मीनू से मिलने की बात सोच रहा था।

जब चाचा ने अपना सामान थैलों के हवाले कर दिया तो मैं उनके साथ जीना उतरकर गया, और उन्हें एक रिक्शा में बैठाकर अपने कमरे में लौट आया। आठ से ऊपर का समय हो गया था। मैंने हडबड़ी में जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और दरवाजे मे ताला डालकर मीनू के घर की दिशा मे बढ़ लिया।

मीनू के घर पहुंचा तो द्वार पर ही ठहर गया। मेरे पैरों मे निःसकोच भाव से कमरे मे घुसने का साहस नही था। बराण्डे मे खडे रहकर मैं घर के भीतर होनेवाली चहल-पहल की आहट लेने लगा। कई मिनट तक जब घर से कोई बाहर नही निकला तो मैं प्रवेश द्वार से लगे कमरे में चला गया, पर वहा कोई नहीं था।

मीनू को वहा न पाकर मेरा दिल धड़क उठा, गोया वह हमेशा के लिए कही दूर चली गयी हो। इसी समय दीना बाहर से आता दिखाई पडा। वह बाजार से लौट रहा था, उसके हाथ मे सब्जी की टोकरी थी। मुझे अकेला देखकर उसने 'जैराम जी की' कहा और मकान के भीतर चला गया।

एक मिनट से भी कम समय मे मीनू अन्दर से आ गयी और मुस्करा कर बोली, "शुक्र है खुदा का कि अभी आप इसी शहर मे हैं! मैं तो समझती थी, जनाब यह जगह छोडकर किसी और ही दुनिया में जा बसे।"

मीनू के चेहरे पर सहज-स्वाभाविक मुस्कान फैली हुई थी, मगर मैं भीतर से इतना असयत था कि मैंने घोर निराश व्यक्ति की कैफियत दी, "यही समझ लीजिये कि मैं कही और जा बसा हूं। आप चाहेंगी तो दुनिया-जहान भी छूट जायगा, यह शहर तो किसी गिनती मे ही नहीं है!"

"देख रही हूं, इन दिनों आप अपने आप में नहीं हैं। पहले तो ऐसे नही थे, अच्छे-भले थे। अब तो जो बोलते हैं, कहर बन जाता है।" मीनू

पूर्ववत् मुस्करा रही थी।

"मेरे शब्दों का कहर किसी पर नाजिल नहीं होगा। अलबत्ता आप जो बहुत भोलेपन में कर रही हैं, वह मेरी मौत का परवाना जरूर हो सकता है। लेकिन छोड़िये, अब आपको इस तरफ गौर करने की फुर्सत ही कहा है !"

मीनू ने पल भर के लिए मेरा चेहरा बहुत गौर से देखा और अपने कंधे सिकोडकर अनजान बनते हुए बोली, "मालूम नहीं, यह आप क्यों कह रहे हैं और क्या कह रहे हैं ?"

मैंने उसकी आखों में सतानेवाली मुस्कान देखी और एक लम्बी सास खीचकर बोला, "मैं पागल हो गया हूं। अच्छा है, आप अब मेरी कोई बात नहीं समझती !"

वह इतने पर भी चुप रही तो मैंने मेज पर पड़ी कापी उठायी और अपनी जेब से कलम निकालकर एक पृष्ठ पर लिख दिया, "मी···मेरे लिए सांस लेने की तरह जरूरी है।" यह लिखते-लिखते भावावेश में मेरा हाथ काप गया, अगुलियों मे थिरकन होने लगी और चेहरा गर्म हो उठा।

मैंने उसकी कॉपी का वह पृष्ठ फाड़ लिया। उसकी कई तहें बनाई और उठते हुए बोला, "मेरा ठहरना व्यर्थ ही है, मैं जा रहा हूं ! मैं आपको जो कुछ दे जा रहा हूं, उसे आप मेरे जाने के बाद पढ़ लीजिएगा। शायद आपको मालूम हो जाये कि आप क्या नहीं जानती हैं।"

कागज उसके हाथ में देकर मैं चलने लगा, तो उसने मेरी कलाई पकड़ ली और बोली, "ऐसे तो आप नहीं जा सकते, बैठ जाइये और आदमी की तरह बातें कीजिये ! मुझे हैरान करने पर आप क्यों तुले हुए हैं ? क्या दुख देने के लिए मैं ही मिली हूं आपको ?"

उसके अनुरोध पर मैं फिर से कुर्सी पर बैठ गया, और उसके हाथ से मैंने एकाएक वह पुर्जा ले लिया। मीनू ने झपटकर उसे लेने की कोशिश करते हुए कहा, "अब वह मेरी चीज है, उसे आप अपने पास नहीं रख सकते !" लेकिन मैंने उसे वापस नहीं दिया, अपने कोट की भीतर वाली जेब के हवाले करके बोला, "उतावली के लिए उसमें कुछ नहीं है। जिसके लिए लिखा गया है, उसी को दे दूंगा। मगर मेरे सामने न पढ़ा जाये, यही

मेरी, उस कागज को देने के साथ, शर्त है !"

"अच्छा बाबा, नही पढूगी, आप चले जाएगे, तभी देखूंगी। आप कहेगे तो कभी खोलकर भी नही देखूगी। अब तो खुश हो!" और फिर सहसा कुछ याद करते हुए बोली, "हां, उस रोज दादा के साथ गाव गये थे तो इतना मुह क्यों फुलाये थे? मुझसे एक भी बात नही की, मैंने आपका क्या विगाडा था? पता नही, कभी-कभी यह क्या हो जाता है आपको! बड़े नखरे करते है आप! जिस बेचारी को ये सम्हालने पड़ेंगे, नाकों मे दम आ जायेगा गरीब के!"

उसके मुंह से यह कटाक्ष सुनकर मैं बहुत उद्विग्न हो उठा। मुझे लगा, उसने आज दूसरी बार यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी जिन्दगी से मेरा दखल खारिज हो चुका है। मैं एकदम उठकर चल दिया। उसने मेरे पीछे चलते हुए कहा, "वह कागज तो देते जाइये! आपने मेरे लिए जो लिखा है, उसे पढ़ तो लेने दीजिये!"··· पहले तो मैंने ऐंठ में भरकर उसकी बात को दरगुजर ही कर दिया, लेकिन जब उसने मेरे कोट की आस्तीन जकड़ ली तो मैंने जेब से पर्चा निकालकर उसके हाथ मे थमा दिया, और तत्काल तेज कदम बढाते हुए बराण्डा पार करके सड़क पर उतर गया।

६

मुझे हल्की-सी आशा थी कि चाचा मेरी बहन को वरपक्ष को दिखलाने के बाद मेरे निवास पर ही लौट आयेंगे। लेकिन मैंने न उनसे लौटने का आग्रह किया था और न उन्होने ही इस विषय मे कोई बात की थी, इसलिए वे वही से घर लौट गये। मैं जानता था कि वे अत्यन्त दुखी और क्रुद्ध होकर गाव लौटे हैं, पर मेरी मानसिकता अपनी बहन के लिए इतना घटिया वर सहन नही कर सकती थी, इसीलिए मैं चाचा के साथ नही जा सका था।

अगले दिन, मैं कोर्ट मे ज्यादा व्यस्त रहा और मुझे किसी बात का

ख्याल नहीं आया। जिस समय शाम को मैं कचहरी से वापस लौट रहा था, "वकील साहब, जरा एक मिनट के लिए रुकिये" सुनकर पीछे की ओर घूमकर देखने लगा। जो आदमी मुझे पुकार रहा था, वह मेरा मुवक्किल बतरा ही था। उसे देखकर मुझपर बड़ी विचित्र प्रतिक्रिया होती थी, मैं उसे देखते ही उखड़ जाता था, कुछ-कुछ क्रोध भी आने लगता था। मुझे लगा कि यह आदमी अब बेवक्त की रागिनी छेड़कर मुझे बोर करने लगेगा। एक परिचित के कहने से मैंने उसका मुकदमा क्या ले लिया यह तो मेरी जान के पीछे ही पड़ गया। मैंने ठहरकर उसके पास आ जाने की प्रतीक्षा की, और जब वह पास आकर दयनीयता से मुस्कराने लगा तो मैंने अपना हाथ मिलाने की गरज से उसकी तरफ बढ़ा दिया।

उसने गर्मजोशी दिखलाई, "आइये एक प्याला चाय हो जाए!" हालांकि पीने की मेरी अपनी भी इच्छा कम नहीं थी, लेकिन मैंने छुटकारा पाने की गरज से कहा, "माफ कीजिये, फिर पीऊंगा किसी दिन, मैं अभी-अभी चाय पीकर ही चला आ रहा हूं।"

उसने मेरी टाल-मटोल को अनदेखा करके किंचित् आग्रह से कहा, "तो मारिये गोली चाय को, मेरे साथ घर चलिये। आप से कुछ देर गपशप ही हो जाएगी! आप तो अभी कुंआरे ही हैं, कोई इन्तजार करनेवाला भी परेशान नहीं होगा अभी तो आपके पीछे!"

बेलाग ढंग से अपनी बात कहकर बतरा ने एक तरह से मुझे अपने साथ ले चलने का निर्णय स्वयं ही ले लिया। मन-ही-मन भुनभुनाता मैं उसके साथ चलने लगा। मैंने सोचा, यह बुड्ढा भी अजीब घनचक्कर है! यह समझता है कि इससे बातें करने के अलावा मेरे पास और कोई काम ही नहीं है, और इसके हिसाब से इस इतनी बड़ी दुनिया में कोई मेरा इन्तजार करनेवाला भी नहीं है। मैं चुपचाप सोचते हुए इसके साथ कदम बढ़ाता रहा, निश्चय ही रात से पहले जान नहीं छोड़ेगा। बार-बार अप-मानित होने के बाद भी शाम को मेरे पांव मीनू के घर की तरफ ही बढ़ जाते थे। जब बतरा मुझे मिला था तो मैं मीनू के घर जाने की ही [illegible] रहा था। मैं स्वयं को दूसरे ढंग से ढालने की कोशिश कर रहा [illegible] सही मीनू का मेरे प्रति समर्पण भाव, कम-से-कम मैं उसके हृदय [illegible]

ही सकता हूं। कोई जरूरी भी तो नही कि जिसे हम प्यार करें, वह हमें चाहे ही ! लेकिन बतरा ने मेरा वह सारा सकल्प ही खत्म कर दिया। मुझे अपने घर ले जाने के प्रस्ताव के पीछे उसका कोई विशेष उद्देश्य नही था, पर फिर भी मुझे वह षड्यन्त्र करता-सा लगा, गोया वह मीनू के पास जाने से मुझे जबरदस्ती रोक रहा हो। यद्यपि मैं उसके साथ ही चल रहा था लेकिन मैंने उसे एक बार और टालने की कोशिश की, "आज तो बतरा, जी, रहने ही दीजिये, फिर किसी रोज चला चलूगा ! आज कोर्ट मे कुछ काम भी ज्यादा था, अब तो घर पहुचकर कपड़े-वपड़े बदलने की इच्छा हो रही है।"

मेरे इनकार से बतरा का चेहरा उतर गया। मुझसे मिलते समय वह अत्यन्त प्रसन्न था, पर अब एकाएक उदास हो गया। मुझे लगा कि मैं एक लाचार आदमी पर अकारण सख्त हो रहा हू। मैंने अपना इरादा बदलते हुए कहा, "अच्छा साहब चलिये, आधा घंटा बाद चला जाऊंगा।"

मेरी रजामन्दी से उसके चेहरे पर खुशी लौट आयी।

मैं और बतरा चलते-चलते एक पतली-सी गली में मुड़ गये। उस तग गली मे जगह-जगह छोटे-बड़े कितने ही गड्ढे थे, और पुराने जर्जर मकानों का मलबा भी गली मे पड़ा था।

बतरा के मकान मे पहुंचकर लगा कि वह भी ध्वस्त खण्डहर के ही किसी हिस्से मे रह रहा है। गली से सटा हुआ एक ऊबड़-खाबड-सा चबूतरा था, जिसके एक भाग मे टूटी-फूटी लखौरी ईंटों और चूने-पलस्तर का ढेर लगा था। चबूतरे के अन्त मे लकड़ी की गली हुई दहलीज और कई सूराखोंवाले झूलते-से किवाड़ थे। मेरा खयाल है, द्वार बन्द होने की हालत में भी चूहे, सांप, छछूंदर आसानी से मकान के भीतर प्रवेश कर जाते होंगे। दरवाजे के नजदीक एक जंग खायी हुई टीन की कुर्सी पड़ी थी, जिसकी टांगें मुड़कर टेढी-मेढी हो रही थी।

दरवाजा भीतर से बन्द नही था, जरा-सा धकियाते ही खुल गया। एक दुवारी पार करने के बाद सहन था, जिसके इधर-उधर कई कोठरिया खाली पड़ी थीं। शायद उनमे रह सकना सम्भव नही था, इसलिए वहा कोई भी नजर नही आ रहा था। सहन में एक लकड़ी की पुरानी सीढ़ी थी

जो सर्दी-गर्मी और बरसात झेलते-झेलते अपनी अन्तिम अवस्था को पहुंच रही थी। बतरा उस सीढ़ी पर सावधानी से चढ़ते हुए बोला, "जनाब ऊपर ही तशरीफ ले आइये!"

मैं भी सहमते-सहमते बतरा के पीछे उस जानलेवा सीढ़ी पर चढ़ने लगा। ऊपर जाकर मैंने एक लम्बी छत देखी। जहां उस छत का आखिरी सिरा खत्म होता था, वहां एक कमरा था जो लम्बा काफी था, मगर चौड़ाई उसकी बहुत ही कम नजर आ रही थी। देखने से लगता था कि वह कमरा अस्थायी रूप से रहने के लिए, बिना किसी नक्शे के, बाद में खड़ा करवा लिया गया था।

कमरे में प्रवेश करने के बाद मैंने देखा कि दीवारों पर रंगीन पत्रिकाओं से देवताओं और अभिनेत्री-अभिनेताओं के चित्र काटकर लेई या गोंद से चिपका लिये गये थे। ज्यादातर चित्र उन पुराने अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की याद दिलाते थे, जो जनता की आंखों से बरसों पहले किनारा कर चुके थे और अब उनका सम्बन्ध सब तरफ से कटकर इन पुरानी घिसी-पिटी दीवारों तक ही रह गया था। कैलेण्डरों और अखबारों में आये दिन विज्ञापित होनेवाली सच्चाइयां कितनी सतही और इकहरी होती हैं, यह इन तिरस्कृत तस्वीरों को देखने से बखूबी प्रकट हो रहा था।

इन तस्वीरों के अलावा दीवारों पर छोटी-मोटी कीलों की संख्या भी काफी थी। ज्यादातर कीलों पर कुछ-न-कुछ टंगा हुआ था। एक खूंटी पर छड़ी और दूसरी पर उधड़ा हुआ रेक्सिन का पुराना एयर बैग लटक रहा था। एक तरफ दरवाजे से थोड़ा हटकर तख्त पड़ा हुआ था, जिस पर कम-से-कम एक-डेढ़ शताब्दी पुराना कालीन बिछा था। तख्त पर एक हिस्से में शतरंज बिछी थी और उस पर मोहरे कुछ इस अदा से जमे थे, जैसे खेलते-खेलते खिलाड़ी इधर-उधर मिनट-दो मिनट के लिए चले गये हों। एक मंझोले आकार की चारपाई पर घिसे गद्दे-रजाइयां पड़ी थीं, जिन्हें सफेद चादर से ढकने के बावजूद पूरी तरह छिपाया नहीं जा सका था।

बेतरह थके हुए और वार्धक्यग्रस्त बतरा ने मरियल आवाज में कहा, "वकील साहब, पता नहीं मुझे पिछले कुछ दिनों से क्या हो गया है कि थोड़ा-सा चलते-फिरते ही मेरा दम फूलने लगता है। आप देख रहे होंगे,

मेरी सास धौंकनी की माफिक चल रही है।"

मैं भी तख्त के एक कोने पर टिक गया था और उस कमरे की बद-इन्तजामी का दबी नजरों से निरीक्षण कर रहा था। मैंने बतरा की बात सुनी तो चौंक पड़ा। मैंने उसके कहने के पहले ही उसका मुरझाया चेहरा और टूटा जिस्म देख लिया था। मैंने उसकी बात का समर्थन जान-बूझकर नहीं किया। घबराये हुए आदमी को उसकी सही हालत से परिचित कराने का अर्थ इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि हम उसे और भी जल्दी मृत्यु के मुह में धकेल देना चाहते हैं!

मैंने बतरा की चिन्ता को लापरवाही से उड़ाते हुए कहा, "ऐसी तो कोई खास बात नहीं है! मुझे भी जिस दिन जरा ज्यादा भाग दौड करनी पड जाती है, 'नर्वस ब्रेक डाउन' महसूस होने लगता है। यों देखिये तो अभी अपनी उम्र ऐसी बीमारी से हजारों कोस दूर होनी चाहिए।" मैंने यह 'नर्वस ब्रेक डाउन' वाली बात ठीक उसी ढंग पर कही, जिस तर्ज पर किसी पार्टी या दावत वगैरह में भागते-दौडते अचानक कोई फिसलकर गिर पडे तो लोग उस पर हंसने के बजाय सहानुभूति दिखाने की गरज से ऐसी बहुत-सी घटनायें सुनाना शुरू कर दें, जब वे स्वयं भी इसी तरह फिसलकर गिर पडे थे।

"अच्छा जी, आपको 'नर्वस ब्रेक डाउन' की बीमारी है? पर आप तो अभी एकदम लड़के ही हैं! यह तो बड़ी बुरी बात है जी, इस उमर में तो आदमी धरती हिलाता घूमता है!" बतरा ने आश्चर्य से मेरा मुह देखते हुए कहा। लेकिन साथ ही मुझ पर यह भी प्रकट हो गया कि मेरी बीमारी ने उसे राहत दी थी। उसके लिए अपनी थकान और टूटन अब शायद उतनी गम्भीर नहीं रह गयी थी। मैंने उसे और भी ज्यादा आश्वस्त करने के इरादे से कहा, "मैं तो इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान ही नहीं देता। अगर इतनी मामूली हारी-बीमारियों को लेकर बैठ जाऊं तो समझ लीजिए, जिन्दगी एकदम बेमजा होकर रह जाय! जीवन सिर्फ उसी दिन तक जीवन है, जब तक कोई इसे जुआरी की तरह दांव पर लगाता है।"

मेरे इस कथन से वह बहुत उत्तेजित हो उठा। शायद मैंने उसके मन में छिपी किसी गहरी भावना को छू दिया था। वह आवेश में मेरा हाथ पकड़-

कर बोला, "आपने जिन्दगी के बारे मे हकीकत बयान कर दी, चन्द अलफाज मे !" लेकिन अगले ही क्षण वह ढीला पड़ गया। मेरे हाथ को उसने जिस उत्तेजना मे पकड़ा था, वह भी शिथिलता में बदल गयी। वह हारे हुए जुआरी की तरह बोला, "आपकी बात अलग है वकील साहब, आपका बहुत-सी चीजें इन्तजार कर रही हैं। बाकी मेरी अपनी जिन्दगी मे कोई शै ऐसी नहीं, जिस पर नजर टिकाकर कुछ और कदम चल सकूं। इस किश्ती को किनारा मिलने का भरोसा नही रहा जनाबेमन !"

अपनी निराशा के समुद्र मे डूबता-उतराता वह कई मिनट तक चुप रहा, और फिर दीवार की तरफ आखें करके क्षीण स्वर मे बोला, "कभी-कभी बेखुदी का आलम एकाएक टूटता है तो मुझे अपने होने का अहसास बेतरह चौंका जाता है, 'अरे अभी तक तू है ? मगर इस जहान में तू कर क्या रहा है ?' कई बार अनजाने मे सब तरफ से गुम हो जाता हूं। कोई बातचीत करनेवाला नही मिलता तो अकेला बैठा, शतरंज के मोहरे इधर-उधर करता रहता हू, सरगर्मी से दोनो तरफ की चालें चलता रहता हूं; मगर जैसे ही अपने से बाहर आता हूं तो खुद के होने पर हैरान रह जाता हू।"

मैं बतरा का चेहरा अचम्भे से देखने लगा। मुझे वह आदमी देखने-भालने मे बहुत साधारण लगा था। मैं सोच भी नही सकता था कि वह इतनी गहराई तक अन्तर्मुख हो सकता है। वह अपनी ही रौ में कह रहा था, "दरअसल मैं इस जमीन का आदमी नही बन सका। मुझसे पुख्ता जमीन न जाने कब छूट गयी। और अब तो उसके मिलने का सवाल भी क्या रह गया, छूट गयी सो छूट गयी !"

बतरा ने अपनी बात बीच में रोककर एकाएक मुझसे जो सवाल किया, उसे सुनकर मैं सन्नाटे में आ गया, "वकील साहब, आप तो बहुत काबिल आदमी हैं, बता सकते है कि मैं इस जमीन पर क्यो हू ? मेरे पैदा होने का क्या मकसद है ?"

मैं बतरा की गहरी दार्शनिक गुत्थियों में उलझने को तैयार नही था। कोई इस अच्छी-बुरी आकर्षक-अनाकर्षक या बेहूदा दुनिया मे क्यो है, इस पर सिर खपाते लाखों दार्शनिक इस दुनिया और इस सवाल को

जहां-का-तहा छोड़कर हर रोज बराबर आ और जा रहे थे, फिर भला मेरी क्या हस्ती थी जो बतरा की जिज्ञासा का उत्तर दे पाता। मैंने अपना ध्यान दूसरी ओर फेरने के खयाल से घड़ी देखी, सवा छह बजे थे। मैंने अपनी जमुहाई जबरदस्ती रोककर बतरा की तरफ देखा, वह फिर अपने आप में गर्क हो गया था। मैंने उठने का निश्चय करके कहा, "अच्छा बतराजी, अब मैं चलता हूं। आप दुनिया-जहान के फालतू सवालों में पड़कर अपनी शान्ति क्यों गवाते हैं, खुश रहने की कोशिश कीजिये !"

वह मुझसे सहमत होने की बजाय ठठाकर हंस पड़ा और दो-तीन मिनट तक बेसाख्ता हसता रहा। पगली हसी रुकने पर बोला, "मैं ठीक सोचता था, वाकई आप बहुत हमदर्द हैं, अपनी उम्र से बहुत आगे हैं। आपका दिलासा देने का ढंग भी अनोखा है ! खैर, अब असलियत को दाबने-ढाकने से क्या हासिल, मेरा तो खेल अब खत्म ही समझिये, मैं किसी लड़ाई में शरीक होने के काबिल नही रहा !"

एक तो शाम की उदासी यों ही मारने के लिए कम नहीं थी, ऊपर से मैं एक ढोंढ मे, एक हारे हुए आदमी के चगुल में फंसा हुआ अनुभव कर रहा था। मुझे बतरा का कथन बहुत भयावह लग रहा था। एक ऐसा आदमी मेरे सामने बैठा था, जिसे अपने अस्तित्व पर रत्ती भर भरोसा नही था। उसके साथ कुछ और पल बैठना मुझे असम्भव लग रहा था। शायद बतरा मेरी बेचैनी भाप गया। हसने की कोशिश करते हुए बोला, "गोली मारिये इन भारी-भरकम बातों को ! आपके साथ बैठकर एक प्याला चाय पीने की तमन्ना है, मैं अभी चाय बनवाता हू।"

मैंने सोचा, चाय पिये बिना वह मुझे जाने नही देगा, इसलिए उससे तत्काल सहमत हो गया, "ठीक है, मैं एक प्याला चाय पीकर ही चला जाऊंगा।"

इसी समय दरवाजे मे दो छायाए प्रकट हुई और हमें देखते हुए कमरे में आगे की ओर बढ़ गयी। कुछ क्षण बाद बारह-तेरह साल की एक लडकी, हाथ मे धुआ देती ढिबरी लेकर हम दोनों के पास आयी और एक स्टूल पर उसे टिकाकर मेरा चेहरा देखने लगी। मैंने उसके चेहरे पर नजर डाली, उसका रंग सांवला था, चेहरा अत्यन्त साधारण और कमजोर था। उसने

घुटनों तक पहुंचने वाला एक मैला-सा सूती फ्रॉक पहन रखा था। उसके हाथ में एक होल्डर था, शायद वह स्कूल का काम करने की तैयारी में थी। बतरा ने उसे पुकारकर कहा, "चन्नी, दो प्याले कड़क चाय बनाकर तो ला, फुर्ती से। पत्ती तेज और शक्कर कम डालना!"

लड़की बोली नहीं, सहमति में सिर हिलाकर वापस लौट गयी। ढिबरी प्रकाश कम और धुआं अधिक दे रही थी, इसलिए मैं उस लड़की के अलावा जो एक अन्य लड़की कमरे में ही दूसरे छोर पर थी, उसे नहीं देख पाया।

जब चन्नी चाय लेकर आयी तो बतरा ने कहा, "यह मेरी छोटी बेटी चन्नी है जी, छठी क्लास में पढ़ती है। इससे बड़ी एक और है, उसका नाम सीमा है।" चन्नी ने चाय के प्याले हम दोनों के हाथ मे पकड़ा दिये और वापस चली गयी।

चाय पीते समय मैं बतरा और उसके परिवार के ही संबंध मे सोचता रहा। मुझे चुप देखकर बतरा ने कहा, "एक लड़का और है। 'है' क्या 'था', हमें छोड़कर न जाने कहां निकल गया। बीस-बाईस साल का जवान था। रहता तो आज मैं इतना बेसहारा न रहता! अब मैं इन लड़कियों को छोड़कर एक-दो रोज के लिए भी कहीं नहीं जा सकता।"

मैंने लड़के के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की, "उसने जाने के बाद आपको कोई खत-वत भी नहीं डाला?"

"अजी कैसा खत-पत्तर? आजकल की संतान परिन्दों-जैसी हैं—पंख निकले और फुर्र हो गये!" बतरा ने बड़े दु:ख से कहा।

चाय खत्म करके बतरा ने प्याला नीचे फर्श पर रख दिया और शतरंज का बोर्ड खींचकर मेरे और अपने बीच करके बोला, "आइये, एक बाजी हो जाए! यह शतरंज ऐसा खेल है जिसमें डूबकर आदमी दुनिया-जहान के सारे किस्सों से बरी हो जाता है, और समझने लगता है कि कोई भारी-भरकम लड़ाई लड़ रहा है।"

मैं बतरा की कैफियत से समझ गया कि वह शतरंज के बहाने जिन्दगी से पलायन कर रहा है। मैंने खेल के प्रति अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की तो वह स्वयं मोहरे इधर-उधर सरकाने लगा। थोड़ी देर तक आक्रमण और

सुरक्षा के दांव चलते रहने के बीच उसने मेरी ओर आखें उठाकर देखा और संजीदगी से बोला, "क्या वाकई आप शतरंज खेलना नही जानते ?"

जब मैंने सिर हिलाकर इनकार कर दिया तो बतरा ने बोर्ड खिसकाकर मेरे और नजदीक कर दिया, और प्रत्येक मोहरे को छू-छूकर मुझे समझाने लगा, "यह बादशाह है जनाब, यह वजीर है, ये दोनो ऊंट, ये दोनो घोडे, कोने पर खडे दोनो हाथी और आगे वाली लाइन में सब पैदल। असली खेल है बादशाह पर हमला और बादशाह का बचाव !"

मैं गहरी दिलचस्पी से मोहरों को देखते हुए बतरा की बातें समझने की कोशिश करने लगा। मैं उस घर के रुग्ण वातावरण के बारे मे सब कुछ भूल गया और जी-जान से प्रयत्न करने लगा कि खेल की 'टेकनीक' मेरी समझ में आ जाए, तो मैं भी कभी-कभार बतरा का दिल बहलाने के लिए घंटा-आध घटा खेलने के लिए बैठ जाया करू।

इसी समय लकड़ी की सीढी पर किसी के चढने का आभास मिला। बतरा तख्त छोडकर उठ गया और दरवाजे की तरफ जाते हुए उत्साह के स्वर मे बोला, "लो, मेरा दोस्त आ गया !"

मैं एकाएक नही समझ पाया कि ऐसा कौन व्यक्ति आ रहा है, जिसके आगमन की खुशी में बतरा की सारी उदासी एक क्षण मे उड गयी और वह चहककर उठ खड़ा हुआ।

आधा मिनट बाद मैंने जिस आदमी को कमरे मे घुसते देखा, वह शहर का सबसे प्रसिद्ध डॉक्टर राव था। आकाश फट जाने-जैसा आश्चर्य मन मे लेकर मैंने हैरत से उस व्यस्त डॉक्टर को देखा, जो रात के समय किसी के घर जाने की फीस पचास रुपये लेता था। मैं सोच भी नही सकता था कि हार्ट-स्पेशलिस्ट डॉक्टर राव उस टूटे-फूटे मकान और गलीज मोहल्ले मे कदम रख सकते हैं। राजेश के पिता 'ब्लड-प्रेशर' के मरीज थे। मैंने कभी-कभी डॉक्टर विक्रम राव को उनका परीक्षण करते देखा था। उन्होंने भी सम्भवत मुझे राजेश के घर में एक-दो बार देखा हो, लेकिन यह आशा करना व्यर्थ था कि वे मुझे पहचानते होंगे।

डॉक्टर राव के आ जाने से उस कमरे का वातावरण चामत्कारिक ढग से बदल गया। मैं किसी तरह भी यह नही समझ पाया कि डॉक्टर राव

इतने अंधेरे, गलीज मकान में कैसे आ पाये होंगे। यह तो तय ही था कि वे इस समय किसी मरीज को देखने इस मकान में नहीं आये थे। फिर मुझे बतरा का वह सम्बोधन भी याद था, जब उसने डॉक्टर के आने की आहट लेते हुए कहा था, 'लो, मेरा दोस्त आ गया!'

डॉक्टर राव के चेहरे पर सहज-स्वाभाविक मुस्कान थी। उन्होंने बतरा से हाथ मिलाया और तख्त पर टिकते हुए मेरी ओर देखकर हसते हुए कहा, "अच्छा, एक वकील भी तशरीफ फरमा रहे हैं?"

मैंने डॉक्टर की ओर अपना हाथ बढ़ाया तो वह हाथ मिलाते हुए बोले, "मुझे खयाल आता है कि आपको पहले भी कहीं देखा हूं।" मैंने डॉक्टर राव को यह नहीं बतलाया कि मैं बैंक-मैनेजर माथुर साहब के यहां अक्सर आता हूं और वहां उनको देख चुका हू। लेकिन डॉक्टर की स्मरण-शक्ति बहुत तेज निकली, वे स्वाभाविक लहजे में बोले, "आप जतीन दास माथुर के यहा जाते हैं न?"

मैंने हैरत से डॉक्टर का चेहरा देखा। डॉक्टर राव की न केवल स्मरण शक्ति तीव्र थी, बल्कि उन्हें माथुर साहब के घर मे देखे गये आदमी का सही-सही हुलिया भी याद था। डॉक्टर राव ने बतरा से निःसंकोच भाव से पूछा, "बतरा जी, आपकी मुलाकात इनसे कहा हो गयी?"

"अजी वही फर्जी बैनामे वाले मामले में इनसे सलाह लेने गया था, किसी के कहने पर। इन्होंने दिलासा तो दे रखी है कि 'केस' जितवा देंगे, पर अब केस जीतकर भी क्या होगा? लौंडा तो घर ही छोड़कर चला गया—मुझमे कौन-सी डेरी चलने वाली है! मुकदमा जीतना-हारना बराबर है!"

डॉक्टर राव ने लड़के के भाग जाने की बात को कोई खास महत्त्व नहीं दिया, हल्के स्वर मे बोले, "अजी जाएगा कहां, भटक-भटकाकर लौट आएगा! एक उम्र ऐसी बेहूदा होती है, जिसमे आदमी भटकने के लिए मजबूर होता है।" फिर शतरंज की बिसात से एक मोहरे को हाथ मे उठाकर बोले, "और एक तरह से यह अच्छा भी है कि आदमी एक बार जिन्दगी के समुद्र मे बेखौफ होकर कूद पड़े और उसकी असलियत को पहचान ले।"

बतरा के लडके के सबंध में डॉक्टर राव ने जो कुछ कहा, वह पता नही कितना सच था, लेकिन इतना तो स्पष्ट ही था कि बतरा को डॉक्टर की बात से दिलासा ही मिली थी। बतरा के चेहरे पर सहज शान्ति उभर आयी थी। वह शतरज के मोहरे नये सिरे से बिसात पर सजा रहा था। डॉक्टर राव कौतुक से बतरा के हाथों की तरफ देख रहे थे ! उन्होने अपने कोट की जेब से आधा सिगार निकालकर जला लिया।

मोहरों को तरतीब से जमाकर बतरा ने डॉक्टर राव से कहा, "अब आप इत्मीनान से बैठ जाइये, जनाब डॉक्टर साहेब ! आप तो मसरूफ ही इतने रहते हैं कि हफ्तों तक आपकी सूरत ही नजर नही आती।" फिर बतरा ने मेरी तरफ देखकर डॉक्टर से कहा, "वकील साहेब भी मुझपर खास मेहरबान हैं। आज तो मैं इनको जबरदस्ती घसीटकर ले ही आया, ये भी कम मसरूफ नहीं रहते !" फिर वह स्वगत सवाद की शैली मे बोलने लगा, "आप-जैसे बडे लोग इस खंडहर मे तशरीफ ले आते है तो मैं भी अपने को जिन्दा समझ लेता हू; वरना अब क्या रखा है, सांस की धौंकनी चलाने में ?"

मुझे डर लगने लगा कि बतरा फिर वही निराशा का चर्खा चला देगा, लेकिन डॉक्टर राव ने बतरा को आगे बोलने का मौका नही दिया, "बतरा साहब, सांस की धौंकनी को वही छोड दीजिए, आपका ऊट बलबला रहा है !"

डॉक्टर राव और बतरा दो-तीन मिनट बाद खेल मे मशगूल हो गये और उनकी अंगुलियां मोहरो के सिरो को इधर-उधर घुमाने लगी। डॉक्टर राव बेखुदी मे एक खास अन्तराल से अपने हाथ को तख्त पर इस तरह पटकने लगे, गोया ताल दे रहे हों।

विचित्र बात यह थी कि डॉक्टर राव के वहां पहुंचने से पहले मैं कई बार उठने की नीयत से घडी देख चुका था, पर अब कही जाने की जल्दी महसूस नही कर रहा था, बल्कि दिलचस्पी से उन दोनों को शतरंज खेलते हुए देख रहा था।

वे दोनों संघर्ष में डूबे हुए थे और बहुत सोच-समझकर चालें चल रहे थे। करीब एक घंटे बाद डॉक्टर राव ने तख्त पर हथेली पटककर एक

जोरदार ठहाका लगाया और गर्मजोशी दिखाते हुए बोले, "मान गया बतराजी आपको ! बहुत सख्त मात दी आज तो आपने, वरना मैं भी अपने को किसी से कम तीसमारखां नही समझता !"

बतरा के चेहरे पर क्षणिक उल्लास उभर उठा और वह बोर्ड पर मोहरे एक जगह एकत्र करते हुए बोला, "अजी जीत-हार तो सब बराबर ही है डॉक्टर साहब ! कभी जीता हुआ दीखने वाला हारे हुए से भी बदतर होता है, असलियत मे।"

डॉक्टर राव ने बतरा की इस दार्शनिक उक्ति पर कोई टिप्पणी नही की। यह भी हो सकता है, उन्होंने बतरा की गम्भीर बात ध्यान से सुनी ही न हो। डॉक्टर राव ने अपनी जेब में हाथ डाला और एक पर्ची निकालकर उसे एक क्षण देखते रहे, और फिर उसे बतरा के हाथ मे देकर बोले, "मैंने 'सिटी क्लीनिक' के डॉक्टर सहगल से बातें कर ली है, आप कल दस बजे वहां चले जाइएगा। सारे टेस्ट हो जाएंगे, रिपोर्ट मेरे पास एक हफ्ते मे डॉक्टर सहगल खुद ही भेज देंगे !"

डॉक्टर राव की दी हुई पर्ची बतरा ने यों ही उल्टी-पल्टी और उसका चेहरा अत्यन्त दयनीय हो उठा। वह उपकार के बोझ से दबकर बोला, "डॉक्टर साहब, आपकी मेहरबानी का कोई ठिकाना नही है, मैं किस काबिल हूं !"

डॉक्टर राव मुस्कराकर बोले, "ये मेहरबानी वगैरह की आप क्या बातें करने लगते हैं, डॉक्टर के पेशे में मेहरबानी जैसी कोई चीज नही होती !" डॉक्टर राव को जैसे इतनी देर बाद कुछ याद आया, "अरे हां, चन्नी और सीमा कहां चली गयी ? आज, दोनों में से कोई नजर नही आ रही !"

बतरा ने आवाज दी, "अरे सिम्मी बेटा, हम लोगो को एक-एक प्याला चाय तो पिला दे।"

बतरा की फरमाइश के जवाब में एक मधुर खनखनाती आवाज कमरे के दूसरे छोर से आयी, "लायी पिताजी ! चाय तैयार है।"

एक लकड़ी की ट्रे मे तीन प्याले चाय लेकर जो लड़की सामने आयी, उसे देखकर मैं अवाक् रह गया; लम्बी, छरहरी, गोरी और पतले नाक-

नक्शवाली लड़की ही सीमा थी। उसकी छोटी बहन चन्नी को देखकर मैं यह कल्पना नहीं कर पाया था कि उसकी बड़ी बहन इतनी खूबसूरत होगी। उसके अण्डाकार चेहरे पर बड़ी-बड़ी और गहरी-काली आंखें भोलेपन की मुस्कराहट से दिप रही थी। इतने सड़े हुए और रुग्ण वातावरण में बला की सुन्दरी युवती रहती है, यह मेरे लिए कम अचम्भे की बात नहीं थी।

डॉक्टर राव ने सीमा को देखकर चुटकी ली, "लो चलो, सीमा ने आखिर खबर तो ली, वैसे यह मुझे बगैर चाय के ही टरकाने की कोशिश करती है!"

सीमा बहुत आत्मीयता से मुस्कराकर बोली, "क्या करें, जब चाय के लिए पूछा जाता है तो जवाब में 'ना' ही सुनने को मिलता है। आज मैंने सोचा, जब आप खुद ही चाय मांगेंगे, तब दूंगी!"

सीमा तीनों प्याले तख्त पर हम लोगों के सामने रखकर चली गयी। मैं चाय पीते हुए बराबर सीमा के बारे में ही सोचता रहा। मेरे सोचने में कोई तारतम्य नहीं था। मेरी आखों में उस घर की अव्यवस्था, आर्थिक-दैन्य और सीमा की सूरत क्रम से कौंध रही थी।

चाय समाप्त करके जब डॉक्टर राव खड़े हुए तो उन्होंने बतरा के कन्धे पर आश्वासन भरा हाथ रखकर कहा, "बतराजी, सारी चिन्ताएं छोड़कर आप खुश रहा कीजिये। सोचने से कुछ नहीं होता! सोचना एक बेकार का मर्ज है।"

इसी समय सीमा भी आ गयी। शायद वह खाली प्याले उठाने आयी थी। उसे देखकर डॉक्टर राव बोले, "सीमा, तुम कल से 'लिबर्टी टाइपिंग सेन्टर' में दोपहर को दो घंटे के लिए टाइप सीखने चली जाया करो। अच्छी स्पीड हो जाएगी तो नौकरी मिलने में कोई दिक्कत नहीं होगी!" सीमा ने सहमति में अपना सिर हिला दिया।

डॉक्टर राव जिस तरह बतरा के कन्धे पर सान्त्वना का हाथ रखे हुए थे और सीमा से टाइप सीखने की बात कर रहे थे, उससे मुझे लगा कि डॉक्टर राव उस घर के लोगों के लिए गहरी हमदर्दी रखते थे।

मैं चुपचाप बैठा उस व्यवहार को लक्ष्य करता रहा, जो डॉक्टर राव और बतरा के परिवार के बीच पनप रहा था। उन लोगों की बातों में

कहीं हल्कापन नहीं था। गहराई में उतरे बिना, उथले ढंग से सोचने पर कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि डॉक्टर राव उस घर में वतरा के लिए नहीं बल्कि सीमा के लिए आते थे।

पता नहीं डॉक्टर राव को कैसे यह आभास हुआ कि मैं उस घर में उसी रोज पहुंचा हूं। हो सकता है, उन्होंने मुझे वहां पहली बार देखकर ही यह अनुमान लगाया हो। जो भी हो, उन्होंने सीमा की ओर उन्मुख होकर कहा, "सीमा, इन्हें जानती हो? ये वकील साहब हैं, आगे जाकर खूब नाम और पैसा कमाएंगे!" और यह कहने के साथ ही डॉक्टर राव ने मुस्कराकर मुझसे पूछा, "क्यों, मैं ठीक कह रहा हूं न मिस्टर···?"

डॉक्टर को मेरा नाम मालूम नहीं था। मैंने उन्हें अपना नाम बतलाया और कहा, "आपकी दुआ बड़ी चीज है! बाकी नाम और पैसा मैं कभी कमा सकूंगा, इसमें मुझे सन्देह है। कोई नहीं कह सकता कि पैसा और यश इस दुनिया में आदमी को किस खास चीज या योग्यता के बल पर मिलते हैं!"

"यस, यस! यू से वेरी करेक्ट", कहकर डॉक्टर राव फिर मुस्करा पड़े। डॉक्टर राव ने सीमा को मेरा परिचय दिया था, सो उसने मेरी ओर अपने दोनों हाथ जोड़ दिये और कहने लगी, "पिताजी आपका जिक्र तो कई बार करते हैं, पर आपको देखा आज ही है।"

डॉक्टर राव सीमा और वतरा से दीगर बातें करते रहे, मगर मेरे कानों में डॉक्टर के ये शब्द, 'आगे जाकर खूब नाम और पैसा कमाएंगे', गूंजते रहे। यह एक विद्रूप ही था कि जिसकी वकालत सिर्फ बरायेनाम चल रही थी, कि वह शहर छोड़कर भाग खड़ा न हो, उसे डॉक्टर राव पैसा कमाने के योग्य करार दे रहे थे। मेरा डॉक्टर राव से स्पष्ट परिचय नहीं था, उन्होंने मुझे काला कोट पहने देखकर ही यह सदाशयता व्यक्त की थी, इसे गम्भीरता से ग्रहण करना मेरे लिए मूर्खता थी।

थोड़ी देर बाद मैं और डॉक्टर राव उस प्राणलेवा सीढ़ी से नीचे उतरने लगे, तो डॉक्टर राव की टॉर्च ने जबरदस्त रक्षा की। खैर, किसी तरह उस बेहूदा सीढ़ी से उतरकर हम दोनों नीचे सहन में पहुंच गये। वहां भी इतना गहरा अन्धकार था कि मुझे डर लगने लगा, कहीं सांप-बांप न

घूम रहे हों ! डॉक्टर ने बराबर टॉर्च जलाये रखी, और हम दोनों किसी तरह मकान से निकलकर उस ऊबड़-खाबड़ गली मे चलने लगे।

गली से बाहर निकलकर मुख्य सड़क पर पहुचे तो डॉक्टर राव ने एक रिक्शा रोका और बोले, "चलिये, मैं आपको छोड़ता हुआ निकल जाऊंगा !" मैंने डॉक्टर से हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आप लेट हो रहे हैं, मुझे कहीं पहुंचने की जल्दी नही है। मेहरबानी करके मुझे यों ही पैदल जाने की आज्ञा दें !"

डॉक्टर राव 'ओ० के० सर', कहकर रिक्शे पर बैठ गये और उनका रिक्शा तत्काल आगे बढ़ गया। सड़क पर इस समय भीड़-भाड़ ज्यादा नही थी। हालांकि मेरा मन अपने निवास पर लौटने का नही था, लेकिन अब कहीं जाने का सवाल ही क्या उठता था ! मीनू के यहां जा सकता था, पर जिस तरह, पिछली बार मैं उसे झिड़की देकर आवेश में चला आया था, उसके बाद वहां जाने का अर्थ ही क्या रह जाता था ?

मैं देर तक स्टेशन की वीरान सड़क पर भटकता रहा, और निरुद्देश्य भटकते हुए ग्यारह बजे अपने कमरे पर पहुंचा। मेज पर थाली ढकी हुई रखी थी, लेकिन कुछ भी खाने-पीने की इच्छा खत्म हो चुकी थी। मैं कपड़े बदलकर बिस्तर पर निढाल-सा पड़ गया। मेरा मस्तिष्क लगभग खाली हो गया था और मैं कुछ भी सोचने-समझने मे असहाय-सा हो गया था।

मैंने बत्ती बुझा दी और आंखें बन्द करके पड़ रहा। एकाएक मेरी आखों मे सोमा के जुड़े हुए दोनों हाथ कमल-दल के सम्पुट की भांति उभर उठे। उसके चेहरे की सहजता, शब्दों की खनक और उसके बोले हुए वाक्य का अन्तिम अंश '"'पर आपको देखा आज ही है !' कानों में कोमल घंटियों की ध्वनि-सा प्रतिध्वनित हो उठा।

७

मुश्किल से दस-बारह दिन गुजरे होंगे कि एक शाम मेरे कदम फिर मीनू के घर की ओर बढ़ लिये। 'जाऊं' या 'न जाऊं' के संकल्प-विकल्प में डांवा-डोल मैं उसके घर के दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया। उसे शायद मेरे पहुचने की आहट मिल गयी थी, वह बाहर के कमरे में ही बैठी थी। तत्काल निकल आयी और उसने हाथ जोड़कर नमस्ते की।

मुझे बैठने को कहकर वह मकान के अन्दर चली गयी और आठ-दस मिनट बाद दीनानाथ मेरे लिए नाश्ते की ट्रे लेकर आ गया।

वह आयी और मुझे गुमसुम बैठे देखकर मुस्कराते हुए बोली, "मेरा दिल कह रहा था कि आज आप जरूर आयेंगे! ऐसे क्यों बैठे हैं, नाश्ता कीजिये न!"

मैंने भी मुस्कराना चाहा, मगर असफल रहा और बगैर कुछ भी सोचे-समझे कहने लगा, "आपको मेरी भूख का बहुत खयाल है! धन्यवाद, लेकिन मुझे भूख नहीं, प्यास है।" मीनू ने तत्काल व्यस्तता से दीनानाथ को आवाज देकर कहा, "दीनू दादा, पानी का गिलास फौरन लाओ!"

"मुझे पानी के गिलास की भी दरकार नहीं है मीनूजी! मेरे भाग्य मे अगर आपके श्रीमुख से कुछ सुनना बदा हो, तो उसी को सुनने आया हूं। शायद वही मेरी भूख-प्यास का इलाज है, अब साधारण पानी से मेरी प्यास बुझती नही दिखती!"

मेरे मुंह से अट-शट बातें सुनकर मीनू सतर्क और गम्भीर हो गयी। वह अपने स्थान से उठी और एक पुस्तक आलमारी से खींचकर उसका कवर हटाने लगी। मैं समझ गया कि उसने पिछली बार मेरे द्वारा दिया गया पुर्जा वही रख छोड़ा है। कवर के नीचे से कई तहों में मुड़ा हुआ कागज निकालकर बोली, "इसी पहेली का हल चाहते हैं न मुझसे?"

मैंने मीनू की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, एकटक उसके चेहरे पर आनेवाले भाव देखता रहा। उसने धीमी आवाज मे कहना शुरू किया, "सच मे इस एक लाइन का जवाब क्या है, मुझे समझ मे नहीं आता! प्लीज, मुझे भूल-भुलैया में मत डालो।"

उसकी मुद्रा मे एक याचना-जैसी भावना स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। मुझे लगा, जो वाक्य मैंने मीनू को लिखकर दिया था, 'मी'''मेरे लिए सांस लेने की तरह जरूरी है।' उसने मीनू को इस दौरान चैन से नही बैठने दिया था। पर यह भी स्पष्ट ही था कि मीनू मेरी जरूरत को लेकर 'हां' या 'ना' मे कुछ व्यक्त करने वाली नही थी। मैं उसके मुंह से स्पष्ट सुनना चाहता था। मेरा खून रगों में दौड़ते हुए तेजी से सिर की ओर चढने लगा। मुझे महसूस हुआ कि मीनू ने मुझे तुरन्त सहारा न दिया तो तनाव के कारण मेरा सिर फट जाएगा।

नाश्ता मेरे सामने 'टीपाय' पर पडा रहा, मीनू ने भी खाने का आग्रह नही किया। वह चुपचाप बैठी कुछ सोचती रही। सम्भवतः वह अपनी बात को शुरू करने का ढग सोच रही थी। मुझे निराश देखकर उसने बहुत धीमे स्वर मे कहा, "राजेश भैया और डैडी केसरी से बातें करके कुछ तय कर चुके हैं। मुझसे कोई राय नही ली गयी है। अगर उन्होंने पूछा भी होता, तब भी शायद मेरे सामने मना करने की कोई वजह नही थी। केसरी और उसके पेरेन्ट्स भी फौरन शादी करने के फेवर में है। इस मामले को लेकर केसरी ने अकेले मे मुझसे सिर्फ एक ही बात पूछी थी, "वी फ्रैंक मिस मीनू, आप किसी को अगर'''। मैं इस मामले मे बहुत इन्डिपेन्डेन्ट व्यू रखता हू। आप मुझे पहली ही नजर मे अजहद भा गयी हैं; लेकिन आपकी दिलचस्पी मेरे लिए मोस्ट इम्पॉर्टेंट है, मैं आगे बढने को तभी तैयार हू, जब आप 'हां' कहें, अदरवाइज आइ विदड्रॉ माई सेल्फ !"

मीनू ने सारी बात बहुत खुलकर कह दी। मुझे उसकी तरफ से सपने मे भी आशा नही थी कि वह इतने नि.संकोच ढग से एक गहरी प्रणयानुभूति को हल्के शब्द देगी। मुझे उन शब्दो को सुनकर जबरदस्त धक्का लगा और मुझे लगा कि मेरा चेहरा अपमान तथा क्षोभ से काला पड़ गया है, जब वह अपने भावी जीवन के सम्बन्ध मे इस सीमा तक आगे बढ़ चुकी है, तो मेरे कहने-सुनने के लिए क्या बाकी है ? मैंने बहुत पहले एक एब्सर्ड नाटक देखा था जिसमे एक पात्र नायक के वेश मे स्टेज पर आता है और थोडी देर बाद खलनायक के संवाद बोलने लगता है। तब दर्शक की हैसियत से मैंने उस स्थिति का भरपूर आनन्द लिया था। लेकिन आज मीनू और केसरी के

बीच अपनी स्थिति जानकर मुझे लगा कि मैं ही वह खलनायक हूं।

मुझे लगभग बेहोशी की-सी हालत मे देखकर मीनू ने मेरा कन्धा छूकर कहा, "राजेश आपको कितना चाहता है, कहना बेकार है! आप राजेश से एक बार बातें कर देखिये न !"

मीनू ने अपनी स्थिति ऐसे मोड़ पर लाकर छोड़ दी थी कि उससे इस सम्बन्ध मे मैं एक शब्द भी नही कह सकता था। जहां तक राजेश का सवाल था, शायद इस जीवन मे मैं अब वह बात अपनी जुबान पर भी नहीं ला सकता था। मुझे सबसे भयकर आघात इस तथ्य को जानकर लगा कि मीनू की जिन्दगी मे इतने लम्बे समय तक मेरा स्थान अपरिहार्य नही बन पाया था। उसके लिए मैं या केसरी एक-जैसे ही थे, कोई तीसरा भी हो सकता था। एक झटके मे वे सारे अदृश्य तन्तु टूट-बिखर गये, जिनमे मेरे जीवन का मोहक सगीत समाया हुआ था।

मैंने मीनू को अपने मन की गहरी उथल-पुथल का कोई आभास देना व्यर्थ ही समझा। भरसक सहज होने की चेष्टा करते हुए बोला, "ठीक है, मैं देखूगा···"

जीवन के इतने वर्षों तक सहेजा हुआ एक खूबसूरत भ्रम इतनी बेरहमी से टूट जाएगा, मैंने कभी नही सोचा था। मैंने अनायास ही एक लम्बी सास ली और मन में कहा, "चलो, सारे भ्रम टूट गये, यह भी किसी-न-किसी दिन तो होना ही था !"

मीनू को शायद यह आशा थी कि मैं अभी और बैठूगा और इस सम्बन्ध मे बातें करूंगा, लेकिन मैं भयकर उच्चाटन की मन.स्थिति मे कुर्सी छोडकर एकदम उठ गया और स्वयं को स्थगित करते हुए बोला, "आल राइट, खुदा हाफिज ! माई हार्टीएस्ट काग्रेचुलेशस फॉर योर हैप्पी फ्यूचर !" मैं यह एक सांस में बोलकर चल दिया। मीनू के लिए मेरा यह व्यवहार अकल्पित था। शायद वह समझ रही थी कि मैं अपने प्यार का वास्ता देकर उसे अपने पक्ष में सोचने के लिए बाध्य करूगा, यह भी कहूंगा कि वह राजेश के निर्णय को बदलवाने की नीयत से अपने आपको दृढ़ निश्चयी बनाये। मगर मैंने उस प्रसंग को पूरी तरह काट ही दिया, तो मीनू की कुछ समझ मे नहीं आया कि अब वह क्या कहे !

मैं चल दिया तो वह मेरे पीछे-पीछे आयी और पूछने लगी, "अब कब आयेंगे ?"

मैंने विद्रूप भरी हंसी के बीच कहा, "कोई गुजरा हुआ वक्त नहीं हूं, जब चाहो, मेहरबां होके बुला लो मुझे !" यह कहने के साथ ही मैं मीनू को जहां-का-तहां छोड़कर बराण्डा पार करके गली में जा पहुंचा।

मैं सड़क पर अनजाने में अकड़कर चलने लगा। इसी ऐंठ में मैंने अपने दोनों हाथ पतलून की जेब में डाल लिये। पतलून की जेब में एक कड़ी-सी चीज नजर आयी तो मैंने उसे निकालकर देखा। वह गांव से भेजा हुआ चाचा का खत था, जो उन्होंने शहर से लौट जाने के बाद लिखा था। उस शाम के व्यवहार को लेकर उन्होंने मेरी भरसक भर्त्सना की थी, जब मैं उनके साथ अपनी बहन रामकली के वर को देखने के लिए नहीं गया था। उन्होंने कार्ड में एक पता भी लिखा था, और यह ताकीद की थी कि मैं गंज में रहने वाले श्री निरंजन लाल वर्मा से जरूर मिल लूं, वे अपनी बिरादरी के हमदर्द आदमी हैं और लड़के-लड़कियों के रिश्ते पटाने में विशेष माहिर हैं।

मैं न जाने क्या ऊल-जलूल सोचते हुए गंज की घनी आबादीवाले इलाके में जा पहुंचा। जिस तरफ मैं चल रहा था, वहां शहर के पुराने रईसों के पुराने-बेढंगे, बाबा आदम के जमाने के विशालकाय मकान बने हुए थे।

चाचा ने जो पता कार्ड पर लिखा था, मैंने जेब से कार्ड निकालकर उसे फिर से पढ़ा। उसमें रंगमहल टॉकीज के सामनेवाली गली में पहले ही मकान का हवाला दर्ज था। वहां तक मैं बगैर पूछताछ के ही जा पहुंचा।

वह एक दोमंजिला मकान था। निचले हिस्से में एक तरफ 'स्टेट बैंक' का छोटा-सा बोर्ड लगा था, जिससे जाहिर होता था कि यह एक गोदाम है, जो 'स्टेट बैंक' की 'कस्टडी' में है। मकान के बाहर वाले हिस्से में कई दूकानें थीं, जिनमें से एक में ढाबा था। एक में पंसारी की दूकान तथा एक में पनवाड़ी की दूकान थी। ढाबे के बाहर भट्ठी सुलग रही थी और उस

पर रखी कडाही में कुछ पक रहा था। तेल और मसालों की गन्ध सारे वातावरण को गंधा रही थी। भट्ठी की बगल में एक आदमी उकड़ूं बैठा बीड़ी के कश खींच रहा था। मैंने उसके निकट जाकर पूछा, "निरंजन लाल वर्मा कहां रहते हैं, कुछ पता है ?"

उस व्यक्ति ने मुझे गौर से देखा, जैसे पहचानने का प्रयत्न कर रहा हो। फिर पहचानने में असमर्थ होकर बोला, "वो जो नाटक-नौटंकी करते हैं ?"

मुझे कतई मालूम नहीं था कि निरंजन वर्मा नाटक आदि करते हैं। मुझे असमंजस में देखकर उसने एक जीने की ओर संकेत करके कहा, "सीढियां चढकर दायी तरफ मुड जाना, वहां लोग मिल जायगे।" और अपनी बात खत्म करके वह छाती पकड़कर बुरी तरह खांसने-खंखारने लगा।

*जीने मे जीरो पावर का बल्ब जल रहा था। सीढियों के पत्थर जगह-*जगह से चिटके हुए थे। वे सीढ़िया सत्तर-अस्सी साल पुरानी तो जरूर ही रही होगी। इतने लम्बे-चौड़े मकान का इतना संकरा जीना, मकान बनवानेवाले की मानसिकता का अच्छा परिचय देता था।

सीढियां पार करके मैं जिस कमरे मे दाखिल हुआ, वह एक लम्बा-चौड़ा हॉल था जो शायद सभा-संकीर्तन आदि को नजर मे रखकर बनवाया गया होगा। उस हॉल मे सात-आठ लम्बे-चौड़े पुराने तख्त पडे थे जिनकी लकड़ी समय की मार से मैली होकर काली पड गयी थी। तख्तों से थोड़ा अलग हटकर कई आदमी अजीब-अजीब-से लिबास और आकृतियां धारण किये बैठे थे और सिगरेट-बीडिया फूंक रहे थे। मुझे वहां पहुंचते देखकर उनमें से एक तपाक से बोला, "आइये श्रीमान जी, इधर आ जाइये !"

मैं अपनी कैफियत बयान करता, इससे पहले ही एक छछूंदर-ऐसा मरियल आदमी मुझसे बोला, "आपको डिरामा की बात किसने बताई ? आ गये हो तो चलो आप भी देख लो, बाकी हम बाहरवालों को रिअर्सल में नही आने देते।"

यह सारा संवाद मेरे लिए अनोखा था। मैं उस स्थान पर कोई नाटक देखने की नीयत से नही गया था। मैंने अपनी हैरानी पर

रखते हुए उसी आदमी से पूछा, "निरंजन लाल वर्मा क्या यही रहते हैं? मैं जरा उनसे मिलना चाहता हू।"

वे लगभग सभी मुझे घूरने लगे और तख्तों के स्टेज के पीछे लगे पर्दे की ओर हाथ उठाकर बोले, "निरजन दद्दा वहा हैं, उनसे हुंई जाकर मिल लो।"

उस संकेतित पर्दे को हटाकर मैं पहुंचा तो मैंने देखा, उधर भी कमरे या हॉल का बाकी हिस्सा है और उसमें दस-बारह आदमी बेतरतीब ढंग से इधर-उधर फैले हुए हैं। बीड़ी-सिगरेट के धुए से सारा हॉल बुरी तरह भरा हुआ था। नीचे फर्श पर एक लम्बी-चौड़ी दरी, जो अनेक स्थानों पर फटी हुई थी, सलवटों भरी फैली पड़ी थी।

मुझे वहां पहुंचकर आभास हुआ कि मैं सिरे से ही गलत जगह जा पहुंचा हू। कुछ क्षण तो मैं मूढ बना खड़ा रहा। जब कई लोगों ने गर्दनें आडी-तिरछी मोड़कर मुझे कौतुक से देखना शुरू किया, तो मैंने आगे बढकर निरंजन वर्मा के बारे में पूछना जरूरी समझा। मैंने स्वयं को ऐसे आदमी के समीप खड़ा पाया, जिसके कंधे पर लाल गमछा और कलाई में सूखा गजरा लटक रहा था।

कुछ पल उस विचित्र वातावरण का निरीक्षण करने के बाद मैं समझ गया कि वहां वाकई किसी नाटक की तैयारी चल रही है। हॉल के एक कोने में, सबसे अलग-थलग दो आदमी नाटकीय मुद्राओं में खड़े हुए सवाद बोलने का अभ्यास कर रहे थे। उनके साथ ही एक शख्स रजिस्टर खोले खड़ा था। उसके खड़े होने और बीच-बीच मे बोलने के ढंग से लग रहा था कि वह 'प्रॉम्पटर' का कार्य सरंजाम दे रहा था।

मुझे इतनी देर बाद लगा कि मैं उस अनोखे माहौल में अनजाने ही रस लेने लगा हूं, और जानने को उत्सुक हूं कि वे लोग किस नाटक की तैयारी कर रहे हैं।

कुछ देर दोनों अभिनेताओं का मिमियाना बहुत ध्यान देकर सुनने के बाद जब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दोनों उत्तरा और अभिमन्यु के बीच बोले जाने वाले सम्वादों का अभ्यास कर रहे हैं, तो मुझे अपनी हंसी रोकना कठिन हो गया। उत्तरा की धज भी क्या खूब थी! एक अधेड़

अवस्था का आदमी उत्तरा बना हुआ था। उसकी उम्र पर शायद इसलिए विशेष ध्यान नही दिया गया था कि उत्तरा को तो मंच पर लम्बा घूघट खींचकर विलाप ही करना था। उत्तरा की भूमिका निभानेवाला पात्र बड़े घेर का जांघिया पहने था, जो उसके घुटनो से कुछ नीचे तक लटक रहा था। उसकी घिसी-पिटी कमीज पर होली के रगों के धब्बे जगह-जगह नजर आ रहे थे। वह पैरो मे नीली जुराबें और लाल रग की सलीमशाही जूतियां पहनकर घोड़े की मानिन्द पाव पटक-पटककर डायलॉग बोल रहा था। उसकी कई दिन की बढी हुई दाढ़ी मे सफेदी झलक रही थी, जिससे वह उत्तरा के स्थान पर भीष्म पितामह लग रहा था। कुल मिलाकर महाभारत कालीन घटना पर आधारित वह नाटक एक भौंड़ा मजाक नजर आ रहा था।

कुछ देर तक उत्तरा और अभिमन्यु नाटक के संवादों की रस्साकशी चलती रही और मैं चुपचाप खडा उस हास्यास्पद स्थिति को झेलता रहा। आखिर प्रॉम्पटर ने अपने कान पर अटकी पेंसिल उतारी और रजिस्टर के बीच में रखकर मेरी ओर ध्यान दिया। अभिमन्यु तथा उत्तरा ने भी अपनी-अपनी बीड़ियां जलाकर महाभारत को जहां-का-तहां छोड़ दिया, और अपनी-अपनी वास्तविक दुनिया के बारे में बातचीत शुरू कर दी।

रिहर्सल का निरीक्षण करनेवालो ने नायक-नायिका की प्रशसा करके अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया, "डिरामा इस बार खूब जमके चलेगा, दद्दा को टिकट लगाना पड़ेगा, देख लेना!"

मुझे बौखलाहट में खड़ा देखकर एक आदमी, जिसके गले मे पलग की निवाड़ थी और उसके छोरों से हारमोनियम बंधा लटक रहा था, पूछने लगा, "आप क्या पैली बार आये हैं बाबूजी? पैले आपको कदी देखा नईं" ...और साथ ही उसने अपना परिचय भी दे डाला, "मैं इस डिरामा का पेटी मास्टर सादीराम नाचीज हू!"

मैंने उस 'नाचीज' को धन्यवाद देकर कहा, "जी हां, मैं आज बिल्कुल पहली दफा यहां आया हूं।" वह मेरी बात पर सिर हिलाकर बोला, "अच्छा जी, आप जसदेव 'फानी' साब डाइरेक्टर जी को तो जानते ही होंगे! दशहरे पर नू थेटर कंपनी हर साल डिरामा करती है। फानी साब तो दूर

पार तक सरनाम हैं। 'यमन की हूर' मे उन्होंने धाक जमा दी थी, इस बार 'उत्तरा-अभमन्नू' करने का विचार है। आप डिरामा जरूल देखना। बच्चा-बच्चा इस कंपनी का नाम जानता है।"···

उस आदमी की बातो मे मुझे खासा मजा आया। मैंने अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की, "आपने फानीजी की मशहूरी के बारे मे बतलाया, 'नू थेटर' की जानकारी दी, मुझे बडी खुशी हुई ! मगर मैं न फानी साब को जानता हूं, न 'नू थेटर' के बारे में मेरी जानकारी है। दरअसल उन्हें बच्चा-बच्चा जरूर जानता होगा, लेकिन मेरी मजबूरी यह है कि अब मैं बच्चा नही रह गया हूं।"

वहां खड़े अन्य लोग मेरे कथन पर ठहका मारकर हंस पड़े, लेकिन पेटी मास्टर मेरे व्यंग्य से पूर्ण अनजान बनकर शान्त खड़ा मुझे देखता रहा। हो सकता है, वह सीधा-सादा जड़बुद्धि रहा हो ! एक आदमी ने उसे छेडा भी, "बोलो पेटी मास्टर नाचीज, बाबू साब से अब तुम्हें क्या कहना है ?" जब वह कुछ नही बोला तो उसे छेड़नेवाले आदमी ने मुझसे कहा, "साब, पेटी मास्टर सादीराम भी कंपनी की जान हैं, ये न होते तो 'नू थेटर' कब की फेल कर जाती !"

अपनी प्रशंसा सुनकर सादीराम बहुत खुश हुआ और मुझसे बोला, "आप निरजन दद्दा से मिलना चाहते हैं ?" एक तरफ हाथ उठाकर बोला, "वो रये निरंजन दद्दा !" और साथ ही उसने चीखकर इस तरफ आते आदमी से कहा, "ओये दद्दाजी, ये बाबू साब आपकू पूछ रये हैं।"

'दद्दा' नाम से जिसे सम्बोधित किया गया था, वह एक अधेड़ अवस्था का सूखा-सडा-सा आदमी था। वह मेरे निकट आकर खड़ा हो गया तो मैंने अपना नाम उसे बतलाया। उसने भरसक क्लिष्ट उर्दू का प्रयोग करते हुए अपना नाम निरंजनलाल वर्मा इस तरह बतलाया, "जनाब, फिदवी को ही निरजनलाल वर्मा कहते हैं। मेरे इस्मो शरीफ से हर खासो-आम वाकिफ है।" मैं उसके नाटकीय अन्दाज से समझ गया कि बहुत ही सिडी आदमी से पाला पडा है। अपनी मशहूरी से वह भरा हुआ था। फिर उसने मेरा नाम पूछा, "हुजूर का इस्तकबाल ?"

मेरा मन हुआ कि कहूं, जहन्नुम में जाओ ! मगर अपनी इस इच्छा

को बलपूर्वक दबाकर मैंने कहा, "मैं हीरालाल जी का भतीजा हूं।"

मेरा कधा अपनी गिरफ्त में लेकर वह निहाल होते हुए चहका, "ओ हो, आप तो अपने ही आदमी निकले ! हीरालाल ने आपकी बहुत तारीफ की थी। कह रहा था, जिस दिन वह आपकी बहन को दिखाने यहां आया था, आप किसी 'कमीशन' के सिलसिले मे बाहर गये हुए थे। उसने मुझे आपके बारे में बहुत कुछ बतलाया। आप उम्र में तो छोटे ही लगते हैं, मगर हैं अजहद मसरूफ वकील ! चलो, उस दिन यहां नहीं थे, मगर आपने बाद मे भी इस नाचीज से मिलने की ख्वाहिश महसूस नही की। हम तो आपको कोई-न-कोई मुवक्किल दिलवाते ही रहेंगे।" फिर वह नाटक की ओर लौटते हुए बोला, "क्या आपको नाटक देखने का शौक नहीं है ? न्यू थियेटर का नाम तो कभी कानों में पड़ा ही होगा हुजूर के !" वह लगातार बोल रहा था, लेकिन मैं निरंजन वर्मा के लम्बे-लम्बे सवाद ठीक से नही सुन पा रहा था, क्योंकि मेरे मस्तिष्क में मेरे चाचा का दु खी चेहरा उभर उठा था, जब वे रामकली को दिखाने आये थे और मुझे अपने साथ ही ले जाने की हठ कर रहे थे। मैंने उनके साथ चलने से इंकार कर दिया, तब भी उन्होंने किसी को यह नही बतलाया कि मैं जान-बूझकर उनके साथ नहीं पहुंचा, बल्कि उन्होंने मेरा बचाव ही किया, लोगो से कह दिया कि मैं वकालत के सिलसिले में कहीं बाहर गया हूं।

मैंने वर्मा की बातों की ओर फिर से ध्यान दिया, वह कह रहा था, "अभी आप तशरीफ रखें—मैं आपके सामने सारी बातें तफसील से रखूगा।" इतना कहकर वह लोगो के हुजूम में खो गया। मैं सोचने लगा, नाटक मे पार्ट करने के इतने शौकीन आखिर निरजनलाल वर्मा कहां से इकट्ठे करते होंगे ? फिर मुझे यह सोचकर गहरा क्षोभ हुआ कि मेरी बहन को इतने विदूपकों ने एक साथ देखा होगा, वह बेचारी यहां किस तरह रह पाई होगी ?

धीरे-धीरे रिहर्सल देखनेवाले तथा नाटक में भाग लेनेवाले पात्र वहां से खिसक गये। वर्माजी लौट आये, उन्होंने अपने और मेरे लिए टीन की दो कुर्सिया लाकर वहीं डाल दी और एक पर बैठते हुए बोले, "तशरीफ रखिये वकील साहब!" मैं बैठ गया तो उन्होंने अपनी जेब से बीड़ी का बंडल

निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। मेरे इकार करने पर उन्होंने एक बीड़ी सुलगा ली और स्वय ही बतलाने लगे, "आपके चचा तो खरे आदमी हैं, पर वह आपकी बहनवाला मामला कुछ तय नही हो पाया। मुझे भी बात ठप्प पड़ जाने का बडा सदमा है। लडके के बड़े भाई ने भाजी मार दी, नहीं तो मामला सुलझ ही जाता।"···

हालांकि मुझे इस बात में रत्ती भर दिलचस्पी नही थी कि मेरी बहन की शादी किसी ऐसे फटीचर से हो, जिसकी पहली पत्नी दो बच्चे छोड़कर गुजर चुकी है। लेकिन यह कम दुखद और कम अपमानजनक बात नही थी कि ऐसे नकारा ने भी मेरी बहन को नापसन्द कर दिया। वर्मा जी ने मुझे गम्भीर देखकर कहा, "दरअसल लड़के का बड़ा भाई निकम्मा है। वह नहीं चाहता था कि उसके छोटे भाई की शादी हो। बिटिया को देखकर अहमक ने छूटते ही कहा—लड़किनी की उमर जादे है!"

निरजन वर्मा ने मेरे चेहरे पर उभरते गुस्से को देखकर कहा, "लड़के के भाई की बेजा बात पर मुझे भी बहुत गुस्सा आ गया था। मैंने तैश में आकर उससे कहा था, 'अबे साले, तेरा भाई कौन-सा इन्दर देवता है? एक तो रडुआ आदमी, ऊपर से उसके लिए इतने नखरे! चला जा यहां से, नही तो अपने घर से जूते मारकर बाहर कर दूगा!'" वर्मा ने मेरे कन्धे पर सान्त्वना का हाथ रखकर कहा, "साला चिमगादड़ की औलाद, भन्नाकर चला गया। चला जाए हरामी कहीं का!"

अपनी बात कहते-कहते वर्मा इतने अधिक तैश में आ गया कि उसके मुह से थूक उचटकर मेरे चेहरे पर गिरने लगा। उसे लगा कि मुझे शान्त करने के लिए उसे और भी ज्यादा तैश दिखाना चाहिए। वह बगैर दम लिये बोलता चला गया, "कमीनो को लडकी कभी नहीं दिखानी चाहिए थी। ऐसे जलीलो से लड़की की शादी करने से तो यही अच्छा है कि लड़की को कुए मे ढकेल दो!" अन्त मे वर्मा ने फैसला दिया, "सब अपना-अपना भाग्य लेकर दुनिया मे आते हैं। लड़की तो आज तक किसी की कुवारी नही रही। जिसने पैदा किया है, वही नैया पार लगावेगा!"

इस बीच मैंने वर्मा में एक विचित्र परिवर्तन देखा। जब वह मुझे प्रभावित करने के लिए कठिन उर्दू बोल रहा था तो बहुत बनावटी लग

रहा था, लेकिन अब ठीकठाक भाषा का इस्तेमाल कर रहा था और उसकी बातों का मुझ पर असर भी हो रहा था।

जब मैं और वर्मा बातें कर रहे थे, तो पेटी मास्टर सादीराम नाचीज भी लौट आया। वह हम दोनों की बातें सुनकर मुझे सलाह देने लगा, "आप तो शहर मे ही वकालत करते हैं। बहुत से भले घरों मे आना-जाना भी होगा ही, किसी जान-पहचानवाले के लड़के से शादी पक्की क्यों नही कर देते ?"

उस 'नाचीज़' की बात का उत्तर मेरे पास नहीं था, क्योंकि मात्र चाहने-भर से मैं अपनी बहन का विवाह किसी अच्छे और योग्य लड़के से नही कर सकता था। इसी समय वहां एक और आदमी आ गया। उसे देखकर वर्मा ने उससे मेरा परिचय कराया, "वकील साहब, इनसे मिलिये—ये मिसरीलाल बूचे बी० ए० पास हैं। आजकल 'रंगमहल टॉकीज' के लिए पोस्टर तैयार करते हैं। टाइम बच जाता है तो अगर-बत्तियां बनाकर बेचते हैं। बडे लागड़ आदमी है! आजकल पढ़े-लिखे लोगों की हालत बहुत खराब है—कही छोटी-मोटी नौकरी का भी जुगाड़ नहीं मिलता।"

मैंने उस मिसरीलाल बूचे बी० ए० पास को ध्यान से देखा, उस आदमी का एक कान अजीब तरह से तुडा-मुड़ा था। शायद उस टूटे कान की करामात से ही वह 'बूचे' के नाम से पुकारा जाने लगा था। उस नाटक-मडली मे विचित्र हस्तियों की भरमार दिखाई पड़ रही थी।

थोड़ी देर बाद नीचे की दूकान से चाय आ गयी, साथ मे तेल से सरा-बोर पकौड़ियां भी एक प्लेट में सजाकर लायी गयी थीं। वर्मा के आग्रह पर मैंने चाय का प्याला उठाकर अपने होंठों से लगा लिया।

हॉल के बीच में जो परदा पड़ा था, उसे अब तक हटा दिया गया था। मैंने देखा, पर्दे को पकडे एक चारेक साल का बच्चा-सहमा-सा हम लोगों को घूर रहा था। उसके चेहरे पर मैलापन और कपडों पर भी वैसी ही गलाजत नजर आ रही थी। वह हम लोगो के सामने रखी पकौड़ियों की प्लेट को बड़ी हसरत से घूर रहा था।

मैंने उस बच्चे को इशारे से अपने पास बुलाया, तो वह शं

से वर्मा की ओर ताकते हुए धीरे-धीरे आगे बढा और मेरे नजदीक आकर खड़ा हो गया। मैंने उसका नाम पूछा तो उसने कुछ उत्तर नही दिया। उसकी आखें बराबर पकौड़ियों की प्लेट पर लगी हुई थी। वर्मा बीड़ी सुलगा रहा था, और बच्चा भयभीत होकर कभी उसकी ओर देख लेता था, कभी ललचाई आंखो से पकौड़ियों को देखने लगता था। वर्मा ने उसकी तरफ से अपनी आखें हटाकर ऐसा भाव दर्शाया, जैसे उसने बच्चे को देखा ही न हो। वर्मा को अपनी ओर से विरक्त देखकर बच्चा पकौड़ियों पर झपट पडा।

उसके झपट्टा मारने मे कुछ ऐसी आक्रामकता थी कि कई पकौड़िया नीचे फर्श पर भी फैल गयी। उसने फर्श पर पड़ी पकौडियां उठाने में हालांकि काफी तेजी दिखलायी, लेकिन इतनी ही देर में वर्मा ने तड़ाक-तड़ाक दो चांटे उसके गालों पर रसीद कर दिये। मैंने वर्मा का हाथ पकड़ लिया और बोला, "यह क्या किया आपने वर्मा जी, बच्चे की खामखाह पिटाई कर डाली !" वर्मा ने त्यौरियां चढ़ाये-चढाये कहा, "इन हरामियों की आदत बहुत खराब है भाई साब ! साले इतने बत्तमीज हैं कि बस हर वक्त मक्खी-मच्छर की तरह मंडराते रहते हैं, गोया भूखों मर रहे हों, खाने को कुछ नसीब ही न होता हो भुक्खडो को !" वर्माजी का हाथ ज्यो ही मेरी पकड से मुक्त हुआ, उन्होने बच्चे को कन्धे से पकड़कर दूर पिल्ले की तरह उछाल दिया।

यह एक अजीब और शर्मिन्दगी पैदा करने वाली स्थिति थी। मुझे वहां बैठकर चाय पीना और पकौडियों की ओर हाथ बढाना शर्मनाक लगने लगा, लेकिन वर्माजी के लिए यह एक साधारण और रोजमर्रा की बात थी, क्योंकि उन्होंने अपने हाथ में प्लेट उठाकर मुझसे पकौडी लेने का आग्रह किया।

मेरी आखें उस गिरे हुए बच्चे की ओर गयीं तो मैंने देखा कि पर्दे के उस तरफ और भी कई बच्चे आकर खड़े हो गये थे और आपस मे जूझने लगे थे। एकाएक वर्माजी क्रुद्ध होकर उठ खडे हुए और बच्चों की दिशा में लपकने लगे। मैं कुर्सी छोड़कर उठ पड़ा और वर्माजी का हाथ पकड़कर उन्हें अपनी ओर खींचते हुए बोला, "अरे वर्माजी, छोड़िये बच्चे हैं ! उन

लोगों को लड़ने-भिड़ने दीजिये ! इस उम्र में भी यह सब नही करेंगे तो कब करेंगे ?"

शायद वर्माजी यही चाहते थे कि उन्हें कोई हाथ पकड़कर बैठा ले। वे तत्काल शान्त हो गये और वापस कुर्सी पर बैठ गये। यही नही, मुझसे इतनी आत्मीयतापूर्वक बातें करने लगे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मुझसे स्नेहपूर्वक बोले, "आगे से आप कभी-कभी गरीबखाने पर आते जरूर रहियेगा, मिलने-जुलने से ही मेल-मोहब्बत परवान चढ़ती है, कई मुश्किल सवाल भी हल हो जाते हैं।"

मैं चलने के लिए उठकर खड़ा हुआ तो पेटी मास्टर और बूचे भी उठकर खड़े हो गये। वर्माजी जीने की सीढ़ियों तक छोड़ने आये और मुझसे आग्रह करने लगे, "वकील साहब, हम गरीबों पर भी नजरे-इनायत रखना, दर्शन जरूर देते रहना !" मैंने उन तीनों सज्जनों से हाथ मिलाया और सावधानीपूर्वक उन जानलेवा सीढ़ियों से उतरने लगा।

उस अपरिचित वातावरण और अनजान लोगों के झुण्ड से निकलकर जब मैं सड़क पर पहुच गया, तो मैंने अपने सोचने-समझने के ढंग मे एक अनोखा परिवर्तन अनुभव किया। अपनी व्यक्तिगत समस्याएं मुझे एकदम मामूली और व्यर्थ-सी लगने लगीं। मीनू अगर मुझे न अपनाकर किसी और को अपनाती है, तो इससे क्या बड़ा फर्क पड़ने वाला है ? मेरी दुनिया से अगर कोई लडकी बाहर निकल जाए तो इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि सारी दुनिया प्रलय के कगार पर खड़ी है ? यह सही है कि छोटी-छोटी और मामूली चीजें और खुशियां ही एक आदमी की जिन्दगी मे सब कुछ होती हैं; लेकिन अगर वह आपको न मिलकर दूसरों को मिल जाती हैं, तब भी आपको बिसूरने की गुंजाइश कहा बाकी रह जाती है ?

मुझे इस सारी सोच की जड़ में वर्मा का चेहरा नजर आया। वर्मा के बच्चे खडे हुए नमकीन के लिए तरसते हैं, जिसका एक दाना भी सभ्य कहलाने वाले लोग शायद गले के नीचे न उतार सकें। किसकी तकलीफ को ज्यादा महत्त्व दिया जाए ? महज खामखयाली मे जीने वाले फालतू बड़ों को, या भूख-प्यास से लड-झगड़कर भी जीते-जागते इन्सानों को वर्मा-जैसा जिन्दगी के हाथों पिटा इन्सान ड्रामा मे दिलचस्पी लेता।

अपने परिचितों के दुःख-दर्द में सक्रिय रूप से सम्मिलित होता है और विपन्नता में रहकर परिवार का पालन करता है। यही वह सड़ा-गला वर्मा है, जिसने मेरी बहन को नापसन्द करने वाले आदमी को लताड़कर अपने घर से बाहर कर दिया था।

मुझे अपनी समस्याएं बहुत मामूली और मूर्खतापूर्ण लगने लगी। मेरे भीतर बैठे किसी कटखने स्वर ने कहा, "अबे बेवकूफ, तू सही संघर्षों से आँखें चुराकर महज एक लडकी के स्वीकार या इन्कार को जीवन-मरण का प्रश्न बनाये हुए है, जबकि दुनिया बहुत बडी है, उसके सवाल बहुत बड़े हैं। और मुझे सहसा फैज का कथन याद आ गया, 'और भी दु ख हैं जमाने मे मोहब्बत के सिवा···'

जब देर रात को मैं अपने कमरे पर लौटा तो मेरे मस्तिष्क में उलझे-उलझे विचारों का हुजूम इकट्ठा था।

मैंने बिस्तर पर लेटकर आखें बन्द की तो तरह-तरह के दृश्य मेरी आंखों मे उभरने लगे। सबसे पहले निरंजन लाल वर्मा की विचित्र हुलिया-वाली तस्वीर आयी। साथ ही पेटी मास्टर नाचीज का गले मे लटका हारमोनियम और उसकी नाटक सम्बन्धी महत्त्वाकाक्षाए मेरे जेहन मे कौंध गयी। उस मिसरीलाल बूचे बी० ए० पास का भी स्मरण हो आया, जो रंगमहल टॉकीज मे पोस्टर बनाने का काम करता है, और जब उससे भी आर्थिक समस्या हल नही हो पाती तो अगरबत्तिया बनाकर गुजारा करता है। एक मेरे निराश-हताश चाचा की तस्वीर थी जो मेरी बहन के लिए वर खोजने में जमीन-आसमान को एक किये थे। सबके बाद मीनू की सूरत आखों मे आ गयी। मैंने उसे बहुत ठेलना चाहा, मगर वह हठपूर्वक आखों मे समायी रही। हालांकि अब वह महज सपना ही रह गयी थी, लेकिन मैं उस सपने को 'अलविदा' नहीं कह पाया।

८

मैं कचहरी जाने की तैयारी कर रहा था कि तभी नौकर ने आकर बतलाया, "आपको दो आदमी पूछ रहे हैं।" मैंने यह सोचकर कि शायद मुकदमों से सम्बन्धित गवाह वगैरह होंगे, उससे कह दिया, "उन दोनों को यहीं भेज दो।"

नौकर के जाते ही एक आदमी तीर की तरह कमरे मे घुस आया। वह नाटे कद का एक बहुत ही मरियल-सा आदमी था और बड़ी मूर्खता से पान चबा रहा था। पान की पीक उसके होंठों से निकलकर ठोडी तक फैल रही थी। उसके मुट्ठी बांधकर सिगरेट पीने से सू-सू की आवाज आ रही थी। वह महीन धोती पर एक लम्बी कमीज पहने हुए था, जो उसके घुटने छू रही थी। मोटे कांचवाले चश्मे के पीछे से झांकती उसकी आंखें न केवल बहुत बड़ी और भयंकर नजर आ रही थी, बल्कि पपोटों से बाहर निकलती दिखलाई पड़ रही थीं।

मैंने अपने मस्तिष्क पर बहुत जोर दिया, मगर मुझे बिल्कुल याद नहीं आया कि मैंने इस विचित्र रसिया को पहले कहीं देखा हो। मैंने उस पर नीचे से ऊपर तक नजर डाली और कुर्सी की ओर संकेत करके बोला, "तशरीफ रखिये!" वह कुर्सी पर बैठ गया तो मैं उसके बोलने की प्रतीक्षा करने लगा।

अभी वह शख्स अपनी बात आरम्भ भी नहीं कर पाया था कि मिसरीलाल बूचा कमरे मे प्रविष्ट हुआ और हांफते हुए मुझसे बोला, "वकील साहब, जरा एक मिंट के लिए बाहर तो आइये। आपसे जरूरी बात करनी है।"

मैं उस कुर्सी पर बैठे आदमी को जहां-का-तहां छोडकर बूचे के साथ कमरे से बाहर निकल गया। बूचा आधा जीना पार करके सीढियों के बीच मे खड़ा हो गया और फुसफुसाकर बोला, "यही वह लड़का है, जिसे आपके चाचाजी आपकी बहन के लिए देखने आये थे।"

मैंने बूचे की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि से देखकर पूछा, "फिर? अब इसे क्या कहना बाकी रह गया है, मेरे पास क्यों आया है?"

बूचा बगलें झांकते हुए बोला, "इस बारे में मेरी इससे कोई बातचीत नही हुई। दरअसल यह निरजन दद्दा के पास गया था। पहले तो उन्होंने इसे खूब खरी-खोटी सुनायी, और बाद मे इसके यह कहने पर कि यह आपसे एक बार मिलना चाहता है, उन्होंने मेरे साथ करके कहा, 'तुम इसे एक बार वकील साहब से मिलवा ही दो।'"

बूचे की बात सुनकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने लाल-पीले होते हुए कहा, "फिक्र न करो, इस कजड़ से मैं अभी निबटे लेता हूं! कब्र मे जाने की तैयारी कर रहा है, और चला है मेरी बहन से शादी करने!"

मैं सीढियां फलांगते हुए ऊपर कमरे मे जा पहुंचा। बूचा भी मेरे पीछे लपकते हुए आकर खडा हो गया। मैंने बूचे से कहा, "बैठो।"

अब मैं उस आदमी की ओर उन्मुख हुआ, लेकिन इसी क्षण वह उठकर जीने मे गया और तुरन्त लौट आया। मैं समझ गया कि वह सीढियों पर पान की पीक थूककर आया है। वह फिर कुर्सी पर जम गया और एक रगीन रुमाल से मुंह रगडकर बोला, मेरा नाम हर किसन है जी! आपके चाचाजी ने मेरे बारे मे सब बातें बतला दी होंगी आपको…"

मैंने अपने रोष पर भरसक काबू पाने की चेष्टा करते हुए कहा, "चाचाजी ने क्या बतलाया, क्या नही, उसे गोली मारिये, अब आप अपना मतलब खुद बतलाइये।"

उसने न जाने क्यों अतिशय विनम्रता से मेरी ओर अपने दोनों हाथ जोडे और अपने ऊबड़-खाबड दात दिखाकर बोला, "आपकी छोटी बहन से मेरी बात चल रही है न…"

उसकी इतनी नगी और अशिष्ट भाषा सुनकर मैं अपना नियत्रण खो बैठा। मुझे लगा, जैसे उसने मुझे बहुत भद्दी गाली दी है, जो मेरे सारे व्यक्तित्व पर कीचड़ की तरह फैल गयी है। मेरे मन में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ, तो ये मरदूद मेरी बहन से शादी करने के लिए बेचैन हैं!" फिर भी शराफत के नाते मैंने बहुत ठंडे लहजे में कहा, "पर अब तो वह बात ही खत्म हो चुकी है।"

वह उतावलेपन से बोला, "अजी बात कहां खतम हो गयी? मेरा बडा भाई अव्वल दर्जे का भोंदू है! मुझे तो बाद मे पता चला के उसने आपकी

बहन की उमर जादे बताकर उसे नापास कर दिया। उसे तो मैं देख लूंगा, वह साला कब चाहता है के मेरा उजड़ा घर फिर से बसे ! मैं आपसे अरज करता हू कि उसकी बातो को भूल जाओ। रिश्ता तो मेरा होना है, मैं सोलहों आने तैयार हूं, उस निखट्टू को मुह ही कौन लगाता है !"

मैंने उसकी अर्ज को दरगुजार किया, "आपकी बात आप जानें, अब हमारी तरफ से तो रिश्ते की बात एकदम खत्म हो गयी !" मैंने अपनी घड़ी पर नजर डाली, कचहरी जाने का वक्त हो रहा था। मुझे डर था कि पड़ोसियों में से अभी कोई इधर आ निकला तो क्या सोचेगा, कि मैं इस उम्र और इस लिबास मे मलबूस आदमी से अपनी छोटी बहन की शादी करने का इच्छुक हूं ?···

"वो खतम कैसे हो गयी जी ?" उसके चेहरे पर परेशानी उभर आयी।

मैंने उसे लताड बताई, "वो ऐसे खतम हो गयी ? आप निहायत गावदी हैं और आपका सारा खानदान लफंगा है ! अब समझे आप ?"

मेरे इस अप्रत्याशित उत्तर से उसकी दुबली-पतली देह में गुस्से का बवंडर-सा उठ खड़ा हुआ और वह चीखकर बोला, "जुबान सम्हालकर बात करना, नही तो···"

"नही तो क्या तुम मेरा खून कर दोगे ? चले जाओ वर्ना जूते मार-कर बाहर कर दूगा !" मैंने भी क्रोध से कांपते हुए कहा।

बूचा पेन्टर, जो अभी तक कुर्सी पर बैठा हम॰ दोनों का वार्तालाप चुपचाप सुन रहा था, वातावरण के तनाव से घबराकर बोला, "मेहर-बानी करके आप सज्जन लड़ें नही। जब रिश्ते की बात ही नही रही तो लड़ने-झगड़ने का फायदा क्या है !"

बूचा पेन्टर मुझे जबरदस्ती पकड़कर कमरे से बाहर ले गया और नीचे सड़क पर ले जाकर फुसफुसाते हुए बोला, "वह एक अपढ़-गवार आदमी है, आप ठहरे पढ़े-लिखे इज्जतदार आदमी। आपको ऐसे आदमी के मुह लगना शोभा नही देता वकील साब !"

मैंने बूचे की बात धैर्य से सुनी और उस उजबक के बारे मे सोचने लगा, जो अभी तक मेरे कमरे मे कुर्सी पर डटा बैठा था। मैं जीने की सीढियां चढ़ते हुए बोला, "मिस्टर पेन्टर, आप उसे यहां से फौरन ले

जाइये। दूसरी तरफ रहने वाले मेरे पड़ोसी बीहड किस्म के छड़े-छाटे लोग हैं, अगर उन्हे इस कहा-सुनी की भनक मिल गयी तो शादी करने के इच्छुक इस 'ईडियट' की खोपडी तोड़ डालेंगे !"

मिसरीलाल बूचा लपकते हुए मेरे पीछे आया और हरकिशन को साथ लेकर तत्काल कमरे से बाहर हो गया। मैंने खिड़की से उन दोनों को सड़क पर जाते हुए देखा। मेरा रिश्तेदार बनने का इच्छुक हरकिशन हाथ फेंक-फेंककर बूचे से तैश मे कुछ कहता जा रहा था। मैंने उसे यो उचकते-उछलते देखा तो मुझे गुस्से के बावजूद हसी आने लगी।

खिड़की से हटते ही मुझे समय का खयाल हुआ तो मैं जल्दी-जल्दी कपडे पहनने लगा। इस चकल्लस मे पड़कर साढ़े दस का समय हो रहा था।

९

उसी शाम कोर्ट से लौटते समय मैंने सोचा कि थोड़ी देर के लिए डॉक्टर राव के क्लीनिक की तरफ ही चला चलू। जिस समय मैं डॉक्टर राव के क्लीनिक मे पहुंचा, बत्तियां जल चुकी थी और अंधेरा बढने लगा था। डॉक्टर राव अपनी घूमने वाली कुर्सी छोडकर उठ ही रहे थे। मुझे देखते ही बोले, "आइये जनाब, आप आज इधर कैसे भूल पडे ? बहुत थके-थके लग रहे है, आपकी तबियत तो ठीक है ? बहुत बिजी लग रहे हैं !"···

मैंने थकावट को दबाने का प्रयत्न करके कहा, "ओह डॉक्टर आपने तो क्लीनिक मे घुसते ही मुझे सवालों से जकड़ डाला। मेरी तबियत बिल्कुल ठीक है। एक प्याला चाय पीने की इच्छा मुझे इस वक्त यहा घसीट लायी है।"

"ओके सर", कहकर डॉक्टर ने व्यस्तता से अपने कम्पाउडर को पुकारा और उसके आने पर आदेश दिया, "बढ़िया चाय और कुछ नाश्ता मगवाओ नरसिंह !"

मैंने डॉक्टर राव से कहा, "वकील और डॉक्टर की मुसीबत दोनों तरह है। व्यस्त रहें तो अपने से गये, खाली रहें तो अपने से भी गये और जहान से भी गये!"

मेरी बात पर राव ठठाकर हंस पड़े और बोले "रियेली, ये बहुत पते की बात कही आपने! मुझे कभी-कभी दिनों बीत जाते हैं, बीवी-बच्चों से बातें तक नहीं हो पाती। पिछले दस-बारह सालों में अगर किसी दोस्त या रिश्तेदार की शादी में एक रात के लिए भी बाहर गया हूं तो बराबर उन पेशेन्ट्स का खयाल सताता रहा है, जिन्हें दिन में कभी-कभी दो या तीन बार अटेन्ड करता हूं।"

डॉक्टर की बातों में सहजता के साथ एक विशिष्ट प्रकार की नम्रता भी थी। वे अपनी व्यस्तता से मुझे कतई आतंकित नहीं कह रहे थे। हालांकि जब मैं क्लीनिक में घुसा था तो वे अपनी कुर्सी से उठ रहे थे, लेकिन इस समय वे कुर्सी पर इतनी मुस्तैदी से जमकर बैठ गये थे, जैसे उन्हें घंटों तक कहीं जाना न हो।

इसी समय चाय आ गयी। चाय ट्रे में लायी गयी थी, टी पॉट, चीनी, दूध वगैरह सब अलग-अलग रखे थे। कुछ अच्छे किस्म के बिस्कुट एक प्लेट में थे, और ट्रे को एक साफ तौलिये से ढांपकर लाया गया था।

चाय नरसिंह नाम का आदमी नहीं लाया था। एक दस-बारह साल का सलीकेदार लड़का, ट्रे मेज पर रखकर संयत ढंग से चाय प्यालों में ढाल रहा था। डॉक्टर राव ने प्याला उसके हाथ से लेकर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने चाय की घूंट ली तो राव ने ट्रे से बिस्कुटों की प्लेट उठाकर मेरी ओर कर दी। मैंने एक बिस्कुट लेकर कहा, "डॉक्टर साहब, मुझे अफसोस है कि मैंने आपको बेवक्त घेर लिया। शायद आप कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे!"

डॉक्टर ने अपने प्याले से चाय सिप करके कहा, "आप कतई परेशान न हों, मुझे कहीं जाने की जल्दी नहीं है। अब तो मैं रिलाक्सिंग 'मूड' में हूं।"

मैंने चाय खत्म करके प्याला ट्रे में वापस रखते हुए कहा, "अच्छा, अब मैं चलूंगा, डॉक्टर से इतना वक्त लेना भी ज्यादती है!"

शायद डॉक्टर राव बहुत ही अच्छे मूड में थे। बोले, "अरे, बैठिये तो सही ! मैं तो अब चल ही रहा हू, आप जहां कहें, आपको 'ड्रॉप' करता चला जाऊगा।"

मैं कुर्सी पर ही बैठा रहा, अब मैंने उठकर चलने की कोशिश नही की। डॉक्टर राव ने मेज की दराज से डायरी निकाली और दो-तीन मिनट तक उसे देखने के बाद कम्पाउंडर को पुकारने लगे। कम्पाउडर सामने आकर खड़ा हो गया तो उन्होने मरीजों के सम्बन्ध में कुछ आदेश दिये और अपनी कुर्सी छोडकर उठ गये।

मेज पर रखे बैग मे नरसिंह ने उनकी डायरी आदि रखकर 'रतन-रतन' करके किसी को पुकारा। चाय लानेवाले लड़के ने मेज पर रखे डॉक्टर के बैग को उठाया और बाहर खडी कार में रखने चला गया।

हम दोनों भी क्लीनिक से बाहर निकल आये। डॉक्टर राव ने गाडी में बैठने के बाद मेरे लिए दरवाजा खोल दिया। मैं उनकी बगल में जाकर बैठ गया तो कार स्टार्ट करते हुए बोले, "आप किस तरफ रहते हैं?" फिर उन्हें न जाने क्या खयाल आया, एकाएक पूछ बैठे, "बाइ द वे, क्या आप मिस्टर माथुर के यहां कभी ट्यूटर भी रहे हैं?"

एकाएक मैं उनके प्रश्न को नही समझ पाया लेकिन दिमाग पर जोर डालकर सोचते ही मुझे समझ मे आ गया कि डॉक्टर राव का क्या तात्पर्य है, वे राजेश और मीनू के पिता बैंक-मैनेजर माथुर साहब के बारे में मालूम कर रहे थे। यह सवाल उन्होने किसी खास उद्देश्य से नही पूछा था, उन्होंने दो-चार बार राजेश के यहां मुझे देखा था, इसलिए यही समझते थे कि मैं माथुर साहब की लड़की मीनू का ट्यूटर रहा हूं।

मैंने डॉक्टर राव का भ्रम दूर करने के लिए कहा, "डॉक्टर साहब, मैं माथुर साहब के घर में कभी नही रहा। उनका बेटा राजेश मेरा, 'क्लासफेलो' रहा है। यों मेरा उस परिवार में बहुत आना-जाना है।"

"ओह, आई सी !" कहकर डॉक्टर चुप हो गये। मुझे भी कोई खास प्रसग नही सूझा कि डॉक्टर से बातें करू। जब गाड़ी एक चौराहे पर ट्रैफिक रुके होने के कारण ठहरी तो मैंने कहा, "धन्यवाद डॉक्टर राव, मैं यहीं उतर जाता हूं, मेरा 'लाजिंग' यहां से नजदीक पड़ेगा।"

सम्भवत: डॉक्टर का ध्यान कहीं और था। मेरी बात उन्होंने ठीक से नही सुनी थी। इसी दौरान डॉक्टर की गाडी के पीछे से हॉर्न बजने शुरू हो गये। डॉक्टर राव ने तत्काल अपनी गाड़ी स्टार्ट कर दी। दरअसल चौराहे पर खड़े सिपाही ने इस बीच आगे बढ़ने का सकेत दे दिया था।

"हा, आप कुछ कह रहे थे शायद?" चौराहा पार करने के बाद डॉक्टर राव ने मेरी ओर आखें उठाकर पूछा। मैंने कहा, "कुछ खास बात नहीं थी, मैं यही कह रहा था कि मैं यही से उतरकर चला जाऊगा।"

डॉक्टर राव ने उचटती-सी नजर डालकर कहा, "मैं किसी खास जगह नही जा रहा हूं'''बतरा की तबियत कई दिन से नही देख पाया हू। आज डॉक्टर सहगल ने सारी रिपोर्ट्स भेज दी हैं, मैं वहीं जाने की सोच रहा हूं। आपका मन हो तो चलिये, वैसे कोई खास बात नही है, आपको काम हो तो बात अलग है!"

मैंने भी बतरा को कई दिनों से नही देखा था। अगर उसकी तबियत ठीक होती तो शायद वह स्वय ही मुझसे मिलने आ जाता। मैंने डॉक्टर से कहा, "ठीक है, वही चलिये! मैं भी उस रात के बाद बतराजी के यहां नही जा पाया।"

डॉक्टर राव चुपचाप गाडी ड्राइव करते रहे। बतरा की गली के सामने पहुंचकर उन्होंने गाडी खडी कर दी। जब हम दोनों गाड़ी से बाहर निकलकर गली मे घुस रहे थे तो मैंने देखा, तीन-चार लडके मुझे और डॉक्टर को अजीब नजरो से घूरकर आपस मे कुछ इशारे कर रहे थे। उनके हावभावों से ऐसा जान पड़ता था, जैसे उन्हें बतरा के घर मे डॉक्टर या किसी और का आना-जाना पसन्द नही था।

जब हम लोग बतरा का द्वार खटखटा रहे थे तो लडके डॉक्टर राव की कार के पास जाकर खड़े हो गये। बतरा के घर मे घुसने से पहले डॉक्टर राव ने अपनी गाडी पर एक नजर डाली और दरवाजे के अन्दर हो गये। हम सहन के अन्धेरे मे एक क्षण ठहर गये, ताकि उस घने अन्धकार मे कुछ देख सकने के अभ्यस्त हो सकें।

डॉक्टर राव ने मेरा हाथ पकडा और मुझे लकडी की सीढी तक पकड़कर ले गये। मुझे आश्चर्य तो तब हुआ, जब डॉक्टर अंधेरे में ही

सीढ़ी के डंडो पर चढने लगे। टटोलते और डरते हुए, अंधे-जैसी हालत में मैं भी सीढ़ी के डडों पर चढ़ने लगा। डॉक्टर ने बीच-बीच मे मुझे खतरे से सावधान भी किया। ऊपर छत पर पहुचकर बहुत हल्की पीली रोशनी ने हमें आगे बढने का सहारा दिया।

कमरे में खूटी पर लालटेन टगी हुई थी जो भभक-भभककर जल रही थी। तख्त पर बतरा आखें बन्द किये लेटा था, और उसकी अगुलिया इस ढग से हरकत कर रही थी, जैसे वह कोई हिसाब लगा रहा हो। डॉक्टर राव ने कमरे मे प्रवेश करके कहा, "बतरा साहब, क्या हालचाल हैं आपके ?"

डॉक्टर की आवाज सुनकर सीमा भी वहीं आ गयी और हम दोनों को नमस्ते करके एक ओर खड़ी हो गयी। बतरा पर डॉक्टर राव की आवाज का तत्काल असर पड़ा, उसने आखें खोलकर डॉक्टर को और मुझे देखा। वह उठकर बैठने की कोशिश करने लगा, मगर बैठने के प्रयत्न मे असफल होकर टेढ़ा-सा होकर गावतकिये पर लुढ़क पड़ा। इसके बाद वह अटक-अटककर न जाने क्या कहने लगा, "प पता न न हीं कि रा रा सन कै कै सा···सी सी ऽढी की की व बत्ती बु भुझ ग गयी (पता नहीं किरासन कैसा आ रहा है, सीढ़ी की बत्ती बुझ गयी)।···

मैं और डॉक्टर राव बतरा के पास तख्त पर जाकर एक तरफ को बैठ गये। डॉक्टर राव बतरा का चेहरा ध्यान से देखने लगे। यह जाहिर ही था कि बतरा से ज्यादा बातें करना सम्भव नही रह गया था, उसकी जुबान एकाध वाक्य भी बोलने मे समर्थ नही थी। डॉक्टर राव के चेहरे पर कुछ क्षणों के लिए गहरी गम्भीरता छा गयी, लेकिन उन्होंने बतरा की बीमारी के प्रसग को कोई अभिव्यक्ति नही दी, महज बतरा के कन्धे को थपथपाकर सान्त्वना दी। मुझे भय हुआ कि कहीं बतरा फिर से न बोलने लग जाए। चलो गनीमत हुई, बतरा ने शब्दो का प्रयोग नही किया, वह अपनी आखो के द्वारा ही डॉक्टर की सद्भावना के प्रति कृतज्ञ हो आया।

इसी समय सीमा मुझे और डॉक्टर को बतरा के पास छोडकर कमरे के दूसरी ओर चली गयी। वापस लौटी तो उसके हाथ मे एक फार्म था, जिसे वह तख्त के खाली स्थान पर फैलाते हुए बोली, "डॉक्टर साहब, बोर्ड से यह फार्म आ गया है, धारा चार और सात पर सही के निशान

लगे हैं। मेरी समझ में तो आया नहीं कि क्या कमियां हैं ? जरा आप ही देखकर बतलाइये !"

डॉक्टर साहब ने उस फार्म की धारा चार और सात पर निगाह डाली और मुझसे बोले, "भई, आप वकील हैं, ये धारा-वारा का कुछ चक्कर लगता है, आप ही सुलझाइये इस गुत्थी को !"

मैंने फार्म पर सही के निशान लगी धाराएं देखते हुए कहा, "डॉक्टर राव, बाइ द वे, मेरा नाम अखिल है। 'वकील' की बजाय मुझे अखिल ही कहें तो आभार मानूंगा। जब आप मुझे वकील कहकर सम्बोधित करते हैं तो मैं एकाएक समझ नहीं पाता कि आप किसे बुला रहे है !"

मेरी आपत्ति पर डॉक्टर राव खुलकर हंस पड़े और बोले, "तो जनाब अपने पेशे से आखें चुराना चाहते हैं ? चलिये, आपकी जैसी मर्जी। 'अखिल' है आपका नाम तो वही सही। लेकिन अखिल कुछ अधूरा-सा नही लगता ? मैं आपको 'अखिलेश' कहकर पुकारूं तो कुछ एतराज होगा ?"

मैंने डॉक्टर को धन्यवाद देकर कहा, "सच मे अखिलेश मुझे ज्यादा भरा-भरा लगता है। आप तो नामकरण करने में भी माहिर हैं डॉक्टर साहब !"

"क्यों नही ! जब आपका बेटा होगा तो मुझसे ही नाम रखवाइयेगा उसका। देखिये क्या 'हिस्टॉरिकल' किस्म का एकदम 'ए वन' नाम निकालकर दूंगा !"

डॉक्टर की इस टिप्पणी से मैं एकदम संकुचित हो उठा। सहसा मेरी नजर सीमा के चेहरे पर गयी। वह डॉक्टर के परिहास पर धीमे-धीमे मुस्करा रही थी।

मैंने डॉक्टर राव से आगे कुछ नहीं कहा। फार्म पर अंकित आपत्तियों को गहराई से समझने की कोशिश करने लगा। एक आपत्ति तो 'बोनाफाइड रेजिडेंस' (निवास की उचित अवधि) मे सम्बन्धित थी। दूसरी कोई स्कूली सर्टिफिकेट जमा न करने के बारे में थी। मैंने ऑब-जेक्शन्स को समझ लेने के बाद सीमा से पूछा, "क्या आपने यहां किसी स्कूल में पढ़ाई की है ?"

सीमा की आंखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गयीं, जैसे वह मेरे सवाल को पकड़ने की कोशिश कर रही हो। फिर सहसा उसने अपनी आखें झुकाकर कहा, "मैं आर्य कन्या पाठशाला मे पढती थी—आठवी के बाद नही गयी। पूरे साल की बीमारी से पढना छूट गया···"

सीमा के देखने मे एक ऐसा अकलुप भाव था कि जो मन की गहराइयों तक उतर जाता था। इतने हीन वातावरण मे, जहा दरिद्रता और अभावों के अलावा कुछ भी नही था, सीमा को देखना मन को सान्त्वना देता था। यद्यपि उसने एक पल ही मेरी ओर देखा होगा, पर वही एक क्षण सम्पूर्णता से भरा-पूरा था। पता नही क्यो, इसी समय मेरी आखो मे मीनू का सुन्दर चेहरा घूम गया।

मैंने तख्त पर बदहवास-से पड़े बतरा की ओर देखा—उसकी आखें पूर्ववत् बन्द थी। मैंने सीमा को सुझाव दिया, "आपको अपना आठवीं जमात पास का सर्टीफिकेट स्कूल से लेकर बोर्ड के कार्यालय को तुरन्त भेजना चाहिए। आपके 'बोनाफाइड रेजीडेंस' के लिए मैं कोशिश करूगा—'एफीडेविट' बनवाना पडेगा।"

मेरी बात से सीमा के चेहरे पर खुशी उभर आयी, वह प्रसन्नता से बोली, "उसमे आपको मुश्किल तो नही होगी?"

मैंने शरारत से कहा, "मुश्किल? जहा तक उसका सवाल है, बहुत होगी!" मेरी बात से उसके चेहरे पर परेशानी दिखाई पड़ने लगी तो डॉक्टर राव हसकर बोले, "सीमा, तुम क्या पागल हो गयी हो? इसमे अखिल बाबू को क्या मुश्किल होने वाली है! अरे, इनका काम सुबह से शाम तक 'एफीडेविट' बनवाने के अलावा है ही क्या! कल इनके साथ कोर्ट चली जाना, यह काम दो मिनट मे ये हाथ-के-हाथ करा देंगे।"

डॉक्टर राव की दिलासा से सीमा ने छुटकारे की सास ली और मेरे चेहरे पर कुछ खोजने लगी। बगैर बात किये भी उसकी आंखो मे एक ऐसी भाषा थी, जिसे संवाद की दरकार नही थी। मैंने फार्म की अन्य कई धाराएं सरसरी नजर से पढकर फार्म उसे लौटाते हुए कहा, "ठीक है, इसे कल करा दिया जाएगा—आप निश्चिन्त रहिये!"

अब मैंने फिर बतरा की ओर ध्यान दिया तो यह देखकर दग रह

गया कि उसने अपने कांपते हाथों से शतरंज का बोर्ड तकिये के नीचे से निकालकर बाहर तख्त पर रख दिया था, और डॉक्टर राव उस पर मोहरें रख रहे थे। मैं बतरा की प्राणशक्ति देखकर आश्चर्य में पड़ गया—यह ऐसी हालत में भी शतरंज खेलने की सोचता है? डॉक्टर राव भी सहज लग रहे थे। शायद वे बीमार बतरा को अन्त तक यह अहसास नहीं होने देना चाहते थे कि उसका रोग असाध्य हो चला है।

वे दोनों चालें चलने लगे, हालांकि बतरा तकिये का सहारा लेने के बावजूद एक तरफ को लुढ़का जा रहा था। इसी समय सीमा उस फार्म को लेकर फिर मेरे पास आयी और धीमे स्वर में बोली, "आपने जो बातें बतलायी थीं, वह कुछ ठीक ढंग से मेरी समझ में नहीं आयी। अगर आप उधर कमरे में बैठकर समझा सकें तो अच्छा हो!"

मैंने उसकी बात सुनकर डॉक्टर और बतरा की तरफ देखा, लेकिन उन दोनों में से किसी का भी ध्यान मेरी और सीमा की ओर नहीं था। हालांकि कोई विशेष बात अब मुझे सीमा को नहीं बतलानी थी, लेकिन उसके आग्रह को मैं टाल नहीं सका और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। कमरे के दूसरे छोर पर पहुंचकर वह बोली, "एक मिनट ठहरिये, मैं आपको बैठने के लिए कुर्सी लाती हूं।"

और जल्दी ही वह एक लकड़ी की अनगढ़-सी कुर्सी कहीं से खोज लायी। मैंने कुर्सी पर बैठकर देखा कि लालटेन का उजाला यहां तक नहीं आ पा रहा था। उसने ढिबरी जलाकर दीवार में बने एक मोखे में टिका दी और फार्म मेरे हाथ में देकर एक पर्दे के पीछे चली गयी। शायद उधर खाना-वाना बनाने के लिए थोड़ी-सी जगह सुरक्षित रखकर पर्दा डाल लिया गया था। जब वह कुछ देर बाद वापस आयी तो उसके हाथ में कांच का गिलास चाय से भरा हुआ था। गिलास मेरे हाथ में देते हुए बहुत धीमे स्वर में बोली, "आप चाय पी लीजिये! मुझे फार्म की बाबत आपसे कुछ नहीं पूछना है।"

मैंने हैरत से उसका चेहरा देखा और सोचने लगा कि जब इसे के विषय में मुझसे कुछ नहीं पूछना है, तो मुझे इधर एकान्त में क्यों है?…

शायद वह मेरी दुविधा भांप गयी, उसी धीमे स्वरमे बोली, "फार्म के बारे में तो आपने सब बतला ही दिया था। मैं आपको पिताजी और डॉक्टर साहब से दूर लाकर एक बात मालूम करना चाहती हूं।" वह फिर उठकर गयी और 'चन्नी-चन्नी' करके अपनी छोटी बहन को पुकारने लगी। लेकिन चन्नी की ओर से कोई उत्तर नही मिला तो वह फिर लौटकर मेरे पास आ गयी और बोली, "यह मरी जल्दी ही सो जाती है।"

मैंने चन्नी के जल्दी ही सो जाने पर कोई टिप्पणी नही की तो उसने स्वयं ही बोलना शुरू कर दिया, "चन्नी को तो कुछ भी पता नही है। इसने जहां खाना खाया, दिन छुपते ही सो जाती है। बाबा की हालत दिनों-दिन इतनी बिगड़ती जा रही है कि मुझे रात भर एक मिनट को नीद नही आती। पता नहीं क्यो, मैं बुरी-बुरी बातें सोचने लगती हूं। आधी रात के बाद जब इनकी सांस उखड़कर घड़-घड करने लगती है, तो मैं अकेले मे बहुत घबराने लगती हूं, "कभी-कभी तो···।"

ढिबरी की उस मैली और मनहूस रोशनी मे मैंने सीमा का परेशान चेहरा देखा, उसकी आंखों मे भय की छाया मडरा रही थी, और वह बस रोने को ही थी। मैंने उसकी आखों से बचते हुए, चाय का गिलास कुर्सी के पास नीचे फर्श पर टिका दिया और चुप होकर कुछ सोचने लगा।

मेरी चुप्पी से सीमा और भी ज्यादा उदास हो गई और एक लम्बी सांस खीचकर बोली, "मुझे सच्ची बात कोई नही बतलाता, पता नही क्या होने वाला है?"

सीमा को परेशान देख मैंने दृढता से कहा, "सीमा जी, कोई नही जानता कि अगले पल क्या होनेवाला है! लेकिन बस, एक बात अच्छी तरह समझ लीजिये, घबराने से कुछ भी रुकनेवाला नही है। आप यह क्यों भूल जाती हैं कि जिन पिता के बारे मे आप इतना घबरा रही हैं, वे राय साहब के साथ शतरंज खेल रहे हैं, और यही नही, उनकी पूरी कोशिश दाव जीतने की है!"

मेरी दृढता देखकर सीमा का हौसला बढ़ गया। उसने दुपट्टे से अपनी आंखो मे उमड़ते आंसू पोंछ लिये और भर्राये हुए गले से बोली, "आप चाय पीजिये! ठंडी हो गयी हो तो लाइये, मैं गरम कर लाती हू, अभी

अंगीठी जल रही है।"

झुककर मैंने चाय का गिलास फर्श से उठाया और एक घूट लेकर बोला, "नही, गर्म करने की जरूरत नही है" और फिर उसे सान्त्वना देते हुए बोला, "जो भी होगा, ठीक होगा ! आप साहस और समझ से काम लें। आपकी गम्भीरता और संघर्ष देखकर तो मुझे प्रेरणा मिल रही है।"

मेरी सहानुभूति से सीमा का चेहरा सहज हो आया और वह बोली, "आप तो खैर आज दूसरी ही बार आये हैं, डॉक्टर साहब जब दो-तीन दिन नही आते तो मुझे डर लगने लगता है, "पता नही, किसी दिन क्या हो जाए ! बाबा तो बोल भी नही पाते। चन्नी दिन मे पढ़ने चली जाती है और शाम पड़ते ही सो जाती है।"

मैंने उसका भय कम करने की नीयत से कहा, "आप बहुत चिन्ता न करें। अपने 'एक्जाम' की तैयारी करती रहिये। डॉक्टर राव जैसा मशहूर डॉक्टर आपके परिवार का आदमी बन गया है, उन पर भरोसा रखिये। मैं भी अब आता ही रहूंगा !" पता नही एकाएक मुझे क्या सूझी कि सीमा से पूछ बैठा, "हां, मेरे आने का आप बुरा तो नही मानेंगी ? मेरा मतलब···"

सीमा ने भोलेपन से मेरी ओर देखा और क्षण भर कुछ देखती ही रही। उन आंखों की गहराई मे न जाने क्या कुछ ऐसा छिपा था कि मैं सिहर उठा। मुझे लगा, वह मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को अपनी आखो में तौल रही है। मैंने अपनी आंखें झुका लीं।

वह आहिस्ते से कहने लगी, "आपके आने का मैं बुरा मानूंगी, आपने ऐसी बात कैसे सोच ली ? कौन है, इस इतने बड़े शहर मे हमारा सहारा ? एक भाई था, छोडकर न जाने कहां गुम हो गया, बाबा की हालत आपके सामने है ! डॉक्टर साहब और आपके अलावा, हम गरीबों का अब इस इतनी बड़ी दुनिया मे कौन है ! आपके आने का मैं बुरा मानूंगी ?"···

उसकी आंखों में अपने लिए इतना विश्वास पाकर मैं सचमुच निहाल हो गया। मुझे लगा, मेरी शक्ति और साहस एकाएक कई गुना हो गया है। मैंने सीमा के कन्धे को हल्का-सा स्पर्श देकर कहा, "घबराने की कोई बात नही है ! यह कठिन घड़ी है, मगर कोई डर नही, साहस से

मुकाबला करेंगे। आपकी सहनशीलता से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं।"

सीमा मेरे कथन से अभिभूत होकर कृतज्ञ हो उठी और उसका मुह लाजयुक्त मुस्कान से घिर गया। सहसा मुझे ध्यान आया कि अभी कुछ दिन पहले मैं बतरा से किस 'कदर कन्नी काटता था। वह जब भी मुझे अपने घर ले जाना चाहता था, मैं किसी भी बहाने से पिण्ड छुड़ाने की सोचने लगता था। यह तो बतरा ही था, जिसने मुझे पकडे रखा और घेर-घारकर यहा ले ही आया। मुझे यह सोचकर हैरत हुई कि आदमी कभी-कभी जिस स्थिति को बोझ और थोपी हुई अनुभव करता है, वही आगे जाकर किसी दिन सगीत की लहरी मे भी बदल जा सकती है।

मैंने चाय खत्म कर ली थी। कुर्सी छोडकर उठते हुए बोला, "अच्छा, अब मैं चलता हूं, देखू डॉक्टर राव और आपके बाबा किस मोड़पर हैं! कल मैं किसी समय दिन मे आकर आपको 'नोटरी' के पास ले चलूगा और 'एफीडेविट' बनवा दूगा।" मैं चलने लगा तो वह बोली, "अच्छा, ठीक है! आएगे तो चार बजे से पहले ही?"

"बल्कि दोपहर को ही।"

फिर मुझे खयाल आया कि चन्नी तो स्कूल चली जायेगी। बतरा को अकेले छोडकर सीमा मेरे साथ कैसे जायेगी? मैंने उसे यह बात बतलायी तो वह बोली, "मैं बाबा के पास चन्नी के स्कूल की 'माई' को छोड जाऊंगी वहां कितनी देर का काम है?"

"ज्यादा-से-ज्यादा आधा घटा लगेगा! सिर्फ़ 'ओथ-कमिश्नर' या 'नोटरी' के सामने पेश भर होना है। ठीक है, देख लेंगे!"

मैं लम्बे-लम्बे डग भरता जब डॉक्टर राव और बतरा के निकट पहुंचा तो डॉक्टर ने मेरी ओर उड़ती-सी निगाह से देखकर फिर अपने मोहरों पर आखें केन्द्रित कर ली।

मुझे तख्त के पास खडे देखकर डॉक्टर राव ने कहा, "अखिलेश बाबू, गजब हो गया! बतराजी का बादशाह और वजीर बुरी तरह फस चुके थे। यही नही, जनाब के दोनों हाथी और छह पैदल साफ हो चुके थे। मेरी हालत बहुत मजबूत थी, पर तभी क्या करिश्मा हुआ कि जरा-सा चूकते ही, बैठे-बिठाये मेरी मात हो गयी। मैं गलती से इनका मोहरा चल

बैठा।…"

अपनी बात कहकर राव ने तख्त पर हथेली पटकी और हंस पड़े। बतरा के निढाल चेहरे पर हल्की-सी रंगत दिखाई पड़ने लगी। डॉक्टर ने "कहा, बतराजी, आपकी जीत के साथ ही आज की बाजी खत्म !" और डॉक्टर ने सारे मोहरे समेटकर एक टिन के डब्बे मे डाल दिये, बोर्ड को उठाकर बतरा के तकिये के नीचे सरका दिया।

डॉक्टर राव उठने लगे तो बतरा ने उनका घुटना पकड़ लिया। डॉक्टर उठते-उठते फिर बैठ गये और सीमा को पुकारकर बोले, "सिम्मी रानी, आज क्या चाय भी नही पिलाओगी ?"

"अभी लाई डॉक्टर साहब", सीमा ने दूर से ही उत्तर दिया और मेरे लिए वही लकड़ी की कुर्सी जो कमरे के दूसरे छोर पर पड़ी थी, उठा लायी। मैंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "सीमाजी, चाय सिर्फ डॉक्टर साहब के लिए लाना, "मैं तो…।"

"अच्छा, हां ठीक है चाय अब मेरे लिए भी मत बनाओ !" डॉक्टर राव ने अपनी घड़ी पर नजर डालते हुए कहा।

और यह कहने के साथ ही डॉक्टर ने बतरा का कन्धा थपथपाकर मुझे देखा। मैं समझ गया, डॉक्टर चलने के लिए कह रहे हैं।

सीमा आखिर चाय ले ही आयी। डॉक्टर ने खडे-खड़े चाय पी और सीमा से बोले, "बी ब्रेव गुड गर्ल ! कल अखिलेशजी तुम्हारे फार्म की फॉर-मेलिटीज पूरी करवा देंगे।" चलते समय डॉक्टर राव ने बतरा की ओर नही देखा। शायद यह उन्होने जान-बूझकर ही किया।

जब हम दोनों लकड़ी की सीढी से सभल-संभलकर उतर रहे थे तो सीमा कमरे से लालटेन उठा लायी और मुडेर पर झुककर रोशनी दिखाने लगी।

बचते-बचाते डॉक्टर और मैं किसी तरह गली में पहुंचे तो डॉक्टर ने अपनी जेब से सिगार निकालकर जला लिया, और सहसा मेरी ओर मुड़कर बोले, "आपको क्या लगता है अखिलेश बाबू ?"

मैं एकाएक कुछ समझ नही पाया। मैंने पूछा, "किस मामले में डॉक्टर साहब ?"

"नथिंग-नथिंग" कहते हुए राव आगे बढते रहे। यहां तक कि हम दोनों उनकी कार के नजदीक जा पहुचे।

डॉक्टर ने कार का द्वार खोलकर कहा, "आज तो आपको भी खासी देर हो गयी। पर बतरा का कॉन्फीडेंस जिस तरह से डगमगा रहा है, उसकी वजह से वहां ठहरना जरूरी हो गया था। लगता है आगे बहुत सजीदा हालत से गुजरना होगा !" वे गम्भीर होकर स्वगत वार्तालाप-जैसा कर रहे थे।

डॉक्टर के दोनो हाथ कार चलाने मे व्यस्त थे और उनके होंठो में सिगार अटका हुआ था। मैं उनके बाजू मे बैठा डॉक्टर, बतरा और उसकी बच्चियों के बारे में सोचता रहा, इस समय मुझे रह-रहकर सीमा का खयाल आ रहा था, वह बेचारी अकेले में कितना घबरा रही होगी। पर वहां रुका भी तो नही जा सकता था···।

डॉक्टर ने चौराहे पर पहुंचकर कहा, "आप जहा पहुंचना चाहें मुझे बतला दें, मैं आपको घर तक छोड़ता निकल जाऊंगा।"

चौराहे से थोडा आगे बढते ही मैंने कहा, "डॉक्टर साहब, बस मुझे यहीं छोड दीजिये, मेरा घर यहा से बहुत पास पड़ेगा।"

"ओ० के०" कहकर डॉक्टर ने गाडी रोक ली और अपना हाथ मेरी ओर बढाकर कहा, "ठीक है, अब आप चलिये, उम्मीद है, आपसे जल्दी ही मुलाकात होगी !"

"अवश्य ही होगी" कहकर मैं मुडने लगा तो डॉक्टर ने खिडकी से अपना हाथ बाहर करके हिला दिया।

डॉक्टर राव की गाड़ी एक क्षण में मेरी आखों से ओझल हो गयी।

१०

सीमा से फिर कई दिन मिलने नही जा सका। 'कोर्ट' ने एक 'कमीशन' नियुक्त किया था, जिसमें अन्य वकीलो के साथ मैं भी शामिल किया गया

था। हम कई वकील मौका-मुआयना करने चले गये, और लौटकर अपनी टिप्पणी आदि देने में वक्त लग गया।

कमीशन के काम से छुट्टी पाकर मैं बतरा के घर पहुंचा। वहां पहुंचकर जो दृश्य मैंने देखा, वह बहुत निराशाजनक था, बतरा के बायें भाग पर फालिज का पूरा असर हो गया था, और कमरे में घुसने से पहले ही उसके सांस लेने का भीषण स्वर सुनाई पड़ता था।

मैंने कमरे के भीतर पहुचकर देखा कि बतरा को अपनी कोई सुध नहीं है। वह अपनी चेतना पूरी तरह खो चुका था। उसके तख्त के पास चारपाई डाले सीमा और चन्नी दोनों असहाय बैठी थी। उनकी आंखें लाल और सूजी हुई थी। शायद वे पिछली कई रातों से थोड़ी-सी देर के लिए भी नहीं सो पायी थी।

मुझे पहले ही सन्देह था कि बतरा की स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन डॉक्टर राव के दिलासा देने से मैं गम्भीरता को टाल रहा था। फिर उस रात जब डॉक्टर राव इस घर से लौट रहे थे तो उन्होंने यह संकेत भी दे ही दिया था, कि किसी भी समय कुछ भी घटित हो सकता है।

मुझे कमरे में घुसते देखकर सीमा चारपाई छोड़कर उठ खड़ी हुई और उसकी आंखों से मौन आंसुओं की झड़ी लग गयी। मैंने अपने चेहरे पर चिन्ता का भाव कतई नहीं आने दिया और सीमा के कन्धे पर थपथपाकर कहा, "बी ब्रेव सीमा! हम जहां बेबस हैं, वहीं फिसलन ज्यादा होती है। अंधेरे रास्ते पर हर कदम मजबूती से पड़ना चाहिए।" फिर मैंने बात को बदलने के लिए पूछा, "क्या डॉक्टर राव इस बीच इधर नहीं आये?"

दुपट्टे से अपनी आंखें सुखाते हुए सीमा बोली, "हम लोगों की यही तो बड़ी बदकिस्मती है! परसों रात डॉक्टर साहब जब यहां से बाबा को इंजेक्शन लगाकर जा रहे थे, तो कई गुंडों ने उनके सिर और पीठ पर लोहे की छड़ों से वार कर दिये। हमें तो उस रात पता भी नहीं चला, अगले दिन उनके कम्पाउंडर साहब ने आकर सारी बात बतलायी।"

सीमा की बात सुनते ही मैं समझ गया कि यह काम किन लोगों ने किया होगा। गली के मोड़ पर हुजूम बनाकर खड़े रहनेवाले लफंगे डॉक्टर को घेरने की तलाश में थे ही। डॉक्टर उस तरफ से लापरवाह रहे और

चोट खा गये। लेकिन डॉक्टर की यह चोट बतरा परिवार पर भीषण प्रहार सिद्ध हुई ?

मैंने सीमा को धीरज दिया, "बुरी घड़ी कई तरह से भयावह बनकर आती है और देर तक ठहरती लगने लगती है, मगर बुरी-से-बुरी परिस्थिति भी स्थायी नही होती। तुम दिल-दिमाग पर से सारे बोझ उतार फेंको और जो भी होनेवाला है, उसे महज एक दर्शक बनकर देखो !"

कहने को तो मैं इतनी बडी बात कह गया, लेकिन ऐसा तो कोई चमत्कार होना नही था कि सीमा सारे संकटों से उबर जाती। बतरा बगैर दवा के पडा दम तोड रहा था। उस घर का एकमात्र सहायक डॉक्टर सिर और पीठ तुडवाये पता नही कहां पड़ा था ! लेकिन मैंने सीमा को भयमुक्त करने के लिए बतरा को किसी डॉक्टर को तत्काल दिखलाना जरूरी समझा। मैंने सीमा से कहा, "सरकारी अस्पताल मे मेरे एक परिचित डॉक्टर हैं, मिश्रा साहब। मैं उन्हे फौरन लेकर आता हूं, घबराने की जरूरत नही है।"

मैं चलने लगा तो सीमा ने मुझे रोककर कहा, "आप जरा देर ठहर जाते तो मैं आपके लिए चाय बना देती। कुछ खा-पी जाते तो अच्छा था, पता नहीं, डॉक्टर को लाने मे कितनी देर लग जाये ?"

मैंने सीमा की पीठ हल्के से थपथपाकर कहा, "मेरे खाने की चिन्ता छोडो, मैं खाने-वाने से फारिग होकर आया हू। हां, तुम अपने और चन्नी के लिए जरूर कुछ बना लो। मुझे ज्यादा देर नही लगेगी लौटने मे।"

मैं कमरे से बाहर निकलकर अंधेरे मे कदम संभालकर बढाने लगा, लेकिन तभी सीमा की आवाज मेरे कानों में पडी, "जरा एक मिनट ठहर तो जाइये ! बाहर तो घुप्प अंधेरा है, सीढी से कैसे उतरोगे ? मोमबत्ती और दियासलाई लेते जाओ। जब बाहर जाओ तो दरवाजे के पास आले मे मोमबत्ती बुझाकर रखते जाना —लौटते वक्त फिर जला लेना !"

मैं सीमा की सलाह सुनकर हैरान रह गया। इतनी बुरी मनःस्थिति मे भी उसे मेरी असुविधा का इतना खयाल है। कृष्णपक्ष की घोर अंधियारी रात थी। हालांकि अभी ज्यादा रात नही हुई थी, लेकिन चारों ओर गहरा सन्नाटा व्याप गया था।

सीमा ने मुझे एक छोटी-सी मोमबत्ती और माचिस कहीं से खोजकर ला दी। मोमबत्ती उसने स्वय जलायी और माचिस मेरे कोट की जेब मे डालते हुए बोली, "अब इतनी रात गये कौन डॉक्टर आयेगा! क्यों परेशान होते हो? कल ही जो हो, देख लेना! अब आराम करो, कल सुबह जल्दी उठकर देख लेना।"...

मोमबत्ती के धुंधले प्रकाश मे मैंने सीमा का गम्भीर और गहरी उदासी मे डूबा चेहरा देखा। मुझे लगा कि पिछले दो दिनो मे उसके चेहरे पर करुणा और सब कुछ सह ले जाने की शक्ति आ गयी है। इतने डरावने वातावरण मे भी वह कह रही है, 'अब आराम करो, कल सुबह जल्दी उठकर देख लेना।' मैंने कहा, "आराम भी कर लूगा, लेकिन पहले जरा कोशिश कर देखता हू। डॉक्टर मिल गया तो ठीक है, वर्ना कल तो फिर हो ही जायेगा!"

सीमा ने अब मुझे नही रोका। अपने गले के पदुट्टे को ठीक करते हुए बोली, "जैसा आपको ठीक लगे, वही करो।"

जब मैं सीढ़ी से उतरकर सहन मे पहुच गया तो सीमा बोली, "और हा, एक बात और सुनो, जरा डॉक्टर साहब की हालत तो मालूम करना! वह भी अस्पताल मे तो नही पडे कही। पता नही कितनी चोट लगी होगी! मैं तो उन्हें देखने भी नही जा सकी।" उसके स्वर में चिन्ता और क्षोभ था।

जब मैं डॉक्टर मिश्रा को साथ लेकर बतरा के घर वापस लौटा तो रात काफी जा चुकी थी। जब मैं अस्पताल पहुचा था तो डॉक्टर मिश्रा एक इमरजेन्सी के सिलसिले में ऑपरेशन-थियेटर के अन्दर थे। खैर, ऑपरेशन थियेटर से बाहर आने के बाद उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक मेरी बात सुनी और मेरे साथ चलने को फौरन तैयार हो गये।

मैंने दरवाजे पर पहुचकर अपनी जेब से दियासलाई निकालकर जलायी और द्वार के पास बने आले से मोमबत्ती निकालकर जला ली। मोमबत्ती हाथ मे लेकर मैं आगे बढते हुए बोला, "डॉक्टर साहब, थोड़ी सावधानी से आगे बढ़ें, फर्श उखड़ा हुआ है।..."

जब डॉक्टर मिश्रा उस लकड़ी की सीढ़ी के पास पहुचे तो मैंने

फिर सावधान किया, "मरीज ऊपर की मंजिल पर है और सीढ़ियां जरा कमजोर हैं। मैं आपको रोशनी दिखाते हुए चलूंगा। सीढ़ियों पर आप अपने पाव जमाकर चढ़ें।"

डॉक्टर का बैग मेरे हाथ में था। वे बोले, "जनाब, मशाल बियरर साहब, इस मोमबत्ती को छोड़िये, मेरे बैग मे टॉर्च पड़ी है, बैग इधर लाइये, मैं टॉर्च निकाल लेता हू।"

मैंने देखा, डॉक्टर के चेहरे पर मुझे 'मशाल बियरर' कहते वक्त एक सहज विनोद का भाव उभर आया था। इतने मनहूस वातावरण मे मुझे डॉक्टर का मजाकिया लहजा अच्छा लगा, और मैंने दवाओं वाला बैग उनकी तरफ बढ़ा दिया।

डॉक्टर ने अपनी टॉर्च बैग से निकालकर जला ली और धीरे-धीरे सीढिया चढने लगे। मैं देख रहा था कि डॉक्टर का भारी शरीर हर डडे पर डगमगाने लगता था। जब तक वे ऊपर नही पहुच गये, मैं नीचे सहन मे ही सीढ़ी को पकड़े खड़ा रहा, और फिर सधे कदमो से ऊपर पहुच गया।

डॉक्टर मिश्रा मेरे पीछे चलते हुए कमरे के अन्दर पहुंच गये। बतरा के मुंह से आवाजें भयकर खर्राटों जैसी ही निकल रही थी। दोनों लड़कियां असहाय अवस्था मे उसके पास बैठी मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थीं।

डॉक्टर मिश्रा ने अपने गले मे पडे स्टेथस्कोप से बतरा के गले और पीठ की कई मिनट तक जाच-पड़ताल की, उसकी आखों की पुतलियो का भी मुआयना किया और फिर नब्ज का परीक्षण करने लगे।

इस सारे वक्त कमरे में नहूसत छायी रही। मैं, सीमा और पन्नी आखो मे उत्सुकता भरे, डॉक्टर मिश्रा का चेहरा देखते रहे। डॉक्टर के चेहरे पर कोई भी ऐसा भाव नही था, जिससे कोई अनुमान लगाया जा सके, वे पूरी तरह व्यस्त और चुप थे।

परीक्षण खत्म करके डॉक्टर ने कहा, "एक बर्तन मे थोडा पानी 'ब्वाइल' कराइये, अभी एक इजेक्शन लगाना पड़ेगा।" डॉक्टर का निर्देश सुनते ही सीमा उठकर चली गयी। उसने कमरे के कोने में रखा स्टोव जलाया और एक भगोने में पानी गरम करने लगी। डॉक्टर ने बैग से

इंजेक्शन और सीरिंज निकालकर दीवारों पर इधर-उधर निगाह डाली।

डॉक्टर ने अब तक रोगी के बारे में मुझसे कुछ नहीं पूछा था। उन्हें मेरे कपड़ों से शायद यह नहीं लगा था कि मैं इतनी विपन्न स्थिति में ग्रस्त व्यक्ति हूं। डॉक्टर ने मुझसे पूछा, "क्या ये आपके फादर हैं?"

"नहीं फादर तो नहीं हैं।"···

"देन, फादर-इन-लॉ?" (तब श्वसुर हैं?)

डॉक्टर के 'फादर-इन-लॉ' कहने से मैं बुरी तरह चौंक उठा। मैंने पास खड़ी चन्नी का चेहरा देखा लेकिन वह कुछ नहीं समझी थी। मैंने उसे जल्दी से गरम पानी लाने के लिए भेजा और डॉक्टर मिश्रा को फुसफुसाकर सारी कैफियत बतलाने लगा, "डॉक्टर साहब, ये सज्जन इन दोनों अभागी लड़कियों के पिता हैं। मेरा परिचय इन सज्जन से एक मुवक्किल के रूप में है, बाद में डॉक्टर विक्रम राव के माध्यम से मेरा इस परिवार में आना-जाना होने लगा। वही इस रोगी, जिसे बतरा कहते हैं, का इलाज करते थे, लेकिन इन दिनों डॉक्टर राव खुद···।"

और इसी समय, डॉक्टर राव का जिक्र आते ही मैं डॉक्टर मिश्रा से आगे बातें न कर सका। मुझे याद आया कि सीमा ने अस्पताल जाते समय मुझसे डॉक्टर राव की तबियत के बारे में मालूम करने को कहा था। लेकिन अस्पताल जाने पर मैं डॉक्टर राव के बारे में सब कुछ भूल गया था। मुझे सिर्फ यही याद रह गया था कि जैसे ही डॉक्टर मिश्रा ऑपरेशन-थियेटर से बाहर निकलें, मैं उन्हें तत्काल अपने साथ लेकर चल दूं। मैंने डॉक्टर मिश्रा से मालूम किया, "क्या डॉक्टर राव अस्पताल में ही भर्ती हैं।"

'नो-नो, डॉक्टर राव को गहरी चोटें नहीं थीं, उचटती-सी 'इनजरी' थी। हॉस्पीटल सुपरिन्टेन्डेन्ट सक्सेना ने घर जाकर उनकी ड्रेसिंग कर दी थी। पुलिस-रिपोर्ट भी नहीं कराई राव साहब ने तो। यों पुलिस कप्तान कौल डॉक्टर राव के दोस्त ही हैं, वे अपने तरीके से, वारदात करनेवाले बदमाशों का पता लगा रहे हैं।"

शायद डॉक्टर मिश्रा राव के बारे में और भी कुछ बतलाते कि तभी सीमा आ गयी। संड़सी से वह गरम पानी का भगोना पकड़े हुए थी।

डॉक्टर मिश्रा ने बहुत कठिनाई से एक नस तलाश करके बतरा की बांह मे इंजेक्शन लगाया और सुई तथा सीरिंग को वापस बैग में रखते हुए बोले, "मुह के जरिये तो कोई दवा दी नही जा सकती। कल इनका लम्बर पक्चर करना पड़ सकता है।"

जब डॉक्टर चलने को हुए, तभी सीमा 'ट्रे' मे दो प्याले चाय लिये हुए आ गयी। मैंने डॉक्टर से आग्रह किया कि वे चाय पीकर ही जाए।

डॉक्टर ने मेरे अनुरोध पर चाय का प्याला 'ट्रे' से उठा लिया और संजीदगी से कुछ सोचते हुए चाय पीने लगे। मैंने भी प्याला उठा लिया और चाय सिप करने लगा। दूसरी तरफ से चन्नी ने सीमा को आवाज दी तो वह 'ट्रे' को फर्श पर ही रखकर उसकी बात सुनने के लिए चली गयी।

इसी क्षण चन्नी मेरे पास आकर बोली, "दीदी आपको बुला रही है।"

डॉक्टर मिश्रा को वही बतरा के पास छोड़कर मैं सीमा के पास गया। वह स्टोव के सामने बैठी पराठे सेक रही थी, मुझे देखकर बोली, "जरा इधर तो सुनना!"

मैं उसके पास घुटनों के बल बैठ गया और बोला, "डॉक्टर साहब जा रहे हैं मैं उनको छोडने जा रहा हू। बोलो, क्या कहना है!"

वह बहुत धीमे स्वर मे पूछने लगी, "इन डॉक्टर साहब को क्या फीस देनी है।"

मैंने भी लगभग उसी स्वर में कहा, "बाद मे बतला दूगा। अभी तो कोई फीस दी ही नही है। देखता हूं, क्या फीस 'डिमान्ड' करते हैं। रात का समय है, कुछ ज्यादा भी देनी पड़ सकती है।" और मैं उठ खडा हुआ। डॉक्टर मेरा इन्तजार कर रहे थे। जब मैंने बैग उठाकर उनसे चलने के लिए कहा तो सीमा भी आ गयी और मुझसे बोली, "आपका खाना मैंने बना लिया है, लौटकर आ जाना।" साथ ही उसने डॉक्टर मिश्रा को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके नमस्कार के जवाब मे डॉक्टर ने दायां हाथ मस्तक तक उठाया और कमरे से बाहर निकल गये।

सीमा दीवार पर टंगी लालटेन उतारने लगी। मैंने उसे मना कर दिया और बतला दिया कि डॉक्टर साहब के पास टार्च है, और मेरे पास

लौटने के लिए मोमबत्ती है।

पहले मैं सहन में उतरा, डॉक्टर तब तक छत पर खड़े होकर टॉर्च से रोशनी फेंकते रहे। फिर मैंने सीढ़ी को कसकर पकड़े रखा और डॉक्टर आहिस्ता से उतरकर नीचे पहुंच गये। जब हम दोनों मकान के बाहर निकल रहे थे तो सीमा ने फिर याद दिलाया, "लौटकर यहीं आना, खाना तैयार है !"

मैंने देखा, सीमा और चन्नी दोनों छत पर खड़ी, मुझे और डॉक्टर को घर से बाहर निकलते देख रही थी। मैंने हाथ उठाकर संकेत किया कि वे दोनों कमरे में बतराजी के पास चली जाएं।

मैं और डॉक्टर मिश्रा काफी दूर तक पैदल निकल गये, मगर कोई रिक्शा नजर नहीं आया। इस समय मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ, अगर मैंने अस्पताल से साथ आने वाले रिक्शा-चालक को जाने न दिया होता, तो लौटते समय यह तवालत न उठानी पड़ती। चलते-चलते डॉक्टर मिश्रा सहसा रुक गये और मुझसे बोले, "मिस्टर वर्मा, मरीज की हालत ऐसी नही है कि उसका इलाज घर में चलाया जा सके। आप जितनी जल्दी हो सके, इन्हें अस्पताल पहुंचा दीजिये !"

बतरा की हालत देखकर मैं स्वयं यही सोच रहा था। मैंने डॉक्टर की बात से सहमति व्यक्त की, "मैं भी यही ठीक समझता हूं कि बतराजी को यहां से तत्काल हटा देना चाहिए !"

डॉक्टर मिश्रा चिंतित स्वर में बोले, "घर मे क्या सिर्फ यही बच्चियां हैं, कोई 'मेल' मेम्बर नहीं है ? मेरा मतलब, कोई भाई या अंकल वगैरह ? इसके अलावा मुझे 'फाइनेन्सियल सिचुएशंस' (आर्थिक दशा) भी कुछ अच्छी नजर नहीं आ रही है।"

मैंने साथ चलते-चलते ही डॉक्टर को बतरा परिवार की सारी स्थिति संक्षेप में बतला दी। डॉक्टर उस परिवार की दुरवस्था सुनकर अत्यंत द्रवित हो उठे। वे कहने लगे, "हालात तो वाकई बहुत गड़बड़ है, लेकिन मरीज को तो जैसे भी हो, यहां से फौरन हटाना ही बेहतर है !"

सिनेमा हॉल के सामने जाकर रिक्शा मिला। डॉक्टर फुर्ती से रिक्शे में बैठते हुए बोले, "नो फॉरमेल्टी (कोई औपचारिकता नहीं), अब आप

लौट जाइये ! मैं आसानी से पहुंच जाऊंगा। मुझे पहुंचाने के चक्कर में आपको बिला जरूरत देर हो जाएगी। उधर लड़कियां भी काफी घबरायी हुई हैं।"

ज्योंही रिक्शा आगे बढने को हुआ, मैंने हैंडिल पकड़कर रिक्शा-चालक को आगे नही जाने दिया। मैंने अपनी जेब मे हाथ डालकर दस-दस रुपये के दो-तीन नोट निकालकर डॉक्टर मिश्रा की तरफ बढाते हुए कहा, "आपको रात के समय काफी परेशानी हुई डॉक्टर साहब, आपकी मेहरबानी के लिए मैं दिल से शुक्रगुजार हू !"

डॉक्टर मिश्रा ने फीस के लिए अपना हाथ आगे नही बढाया और, 'दैट्स ऑल, दैट्स ऑल' (ठीक है, ठीक है) कहकर रिक्शेवाले की पीठ ठक-ठका दी। रिक्शेवाले ने मेरी ओर देखा तो मैं हैंडिल छोड़कर एक ओर हट गया। "जरा फुर्ती से बढ़ चलो।" डॉक्टर ने रिक्शा-पुलर से कहा और मेरी ओर हाथ हिला दिया।

मुझे डॉक्टर से इतनी गहरी सहानुभूति की उम्मीद नही थी वे कि रात गये सांघातिक मरीज देखने जाने को राजी हो जाएंगे। अपने पास से इंजेक्शन भी लगायेंगे और फिर भी खुशी-खुशी फीस से मुंह मोड़ लेंगे।

मैं डॉक्टर को विदा देकर लौट पड़ा। मेरे पांव भारी हो रहे थे, और अरक्षित लड़कियों का खयाल करके तो मुझे कोई रास्ता ही नही सूझ रहा था। बतरा की हालत तो अब-तब थी ही, घर का रोजमर्रा का खर्चा चलाने की अलग से मुसीबत थी। बतरा की बिगड़ती हालत देखकर तो मैं तक परेशान हो उठा था, फिर बेचारी लड़कियों के बारे मे तो कहा ही क्या जा सकता था !

नीम अंधेरी सड़कों-गलियों को पार करता मैं फिर उसी दरवाजे जा लगा। मैंने जेब में हाथ डाला तो दियासलाई भी नदारद मिली। डॉक्टर को पहुचाने जाते समय मैं दियासलाई साथ ले जाना भूल गया था।

बड़ी कठिनाई से अन्धे की तरह टटोलते हुए मैं सीढी तक पहुंचा और जैसे-तैसे ऊपर चढ पाया। मुझे कमरे मे घुसते देखकर सीमा चिंता प्रकट करने लगी, "नीचे से आवाज भी नही लगायी, मैं रोशनी दिखा देती !"

मैंने लापरवाही से कहा, "ऐसा कोई खास अंधेरा तो था नही।'

"बोलो, पहले चाय पिओगे या फौरन खाना खाओगे ?"

"तुमने खाने का झंझट बेकार किया ! मेरा तो खाना वहां बना पड़ा ही होगा ।" मैंने हठात् झट बोला और पहली बार अनुभव किया कि बतरा की बीमारी से जो आपत्ति आयी, उसने मेरे और सीमा के बीच से बात-चीत मे आनेवाली अनावश्यक औपचारिकता दूर कर दी। मैं उसे अब 'आप' अथवा 'कीजिए-दीजिए' आदि कहकर सम्बोधन नही कर रहा था, और वह भी सीधे सम्बोधन पर उतर आयी थी, जैसे उसने अभी पूछा था, "चाय पिओगे या फौरन खाना खाओगे ?"

"मैंने अपना खाना बनाया था तो दो पराठे आपके लिए भी बना लिये, इसमें झंझट की क्या बात हो गई ?" सीमा ने मेरे गम्भीर चेहरे पर आंखें केन्द्रित करके पूछा।

मैंने इस सम्बन्ध मे आगे कुछ नही कहा तो वह उठकर चली गयी और स्टोव जलाकर खाना गरम करने लगी। बतरा अष्टावक्र बना पड़ा था, उसे जरा भी सुध नही थी। लेकिन गले से निकलनेवाली भयंकर घरघराहट मे फर्क पड़ गया था।

जितनी देर तक सीमा खाना वगैरह गर्म करती रही, मैं बराबर यही सोचता रहा कि मुझे इन लोगों को छोड़कर अपने निवास पर चला जाना चाहिए अथवा हर बुरी-से-बुरी परिस्थिति का सामना करने के लिए रात यही गुजारनी चाहिए।

सीमा आकर बोली, "चन्नी तो उधर ही पड़कर सो गयी है। उसने खाना पहले ही खा लिया था। चलो, उधर ही बैठकर खा लेना !"

मैंने उठते हुए सीमा के चेहरे पर नजर डाली, लेकिन उसके चेहरे पर पकड़ में आ सकने वाला कोई भाव नहीं था। हालांकि अपनी उम्र के लिहाज से वह अभी उस दौर मे थी, जब लड़किया गम्भीर परिस्थितियों में अविचलित नही रह पाती; लेकिन मुझे यह देखकर भारी राहत मिली कि वह किसी भी स्तर पर अपनी घबराहट व्यक्त नही कर रही थी।

स्टोव के पास ही उसने एक दरी डाल दी थी। एक प्लेट में परांठे और पीतल की कटोरी मे सब्जी थी। स्टोव पर तवा चढ़ाकर उसने मेरी प्लेट से परांठा उठाकर फिर से गरम करना शुरू कर दिया।

उसका चेहरा गम्भीर जरूर था, मगर वह हालत अब नही थी जो मैंने शाम वहां पहुंचकर देखी थी। मैंने मनहूसियत हटाने के खयाल से कहा, "क्या मैं अकेला ही खाना खाऊंगा? तुम्हारा खाना कहां है? अपना खाना भी साथ ले आओ और यह गरम-वरम करने का चक्कर छोड़ो!"

"सवालों से पेट नही भरता, अब आदमी की तरह बैठकर खाना शुरू करो। मैं बाद मे खा लूंगी।"

मैं उतावलेपन से बोला, "तो तुम भी साथ ही क्यों नही खा लेती। आधी रात हो चुकी है।" यह कहकर मैंने अपनी घड़ी उसके सामने कर दी, पौन बजा था।

स्टोव से तवा उतारकर सीमा ने उस पर सब्जी का बर्तन रख दिया। मैंने एकदम खाना बन्द कर दिया और बोला, "यह कर क्या रही हो तुम? एक बार परांठे गरम करती हो, दुबारा सब्जी गरम करती हो। मुझे नही चाहिए यह गरम का नखरा! तुम साथ बैठोगी, मैं तभी खाऊंगा!"

"मैं अब तक खाये बगैर नहीं बैठी हूं, मैंने पहले ही खा लिया है।"

"जी हा, आपने तो बनाते-बनाते ही पेट मे रख लिया है। मेरे से बेकार की बहानेबाजी मत करो, चलो उठाओ प्लेट और अपना खाना भी परोसो!"

मेरे बार-बार हठ करने पर उसने पीतल की एक तश्तरी लेकर उसमें एक परांठा और सब्जी परोस ली। वह टुकड़ा तोडकर बहुत धीरे-धीरे चबाने लगी। मैंने उसे डाटा, "मरो मत, ढग से खाना खाओ! जो होना होगा, उसे कोई नही रोक सकता। इस तरह भूखे मरकर तो कोई हौसला ही बाकी नही रहेगा! फिर चन्नी अभी एकदम नादान है, उसको एक मिनट के लिए भी यह पता नही चलना चाहिए कि कोई बड़ा संकट सामने है।"

खाना खत्म करने के बाद मैंने कहा, "सीमा, अब मैं चलूंगा, सुबह जल्दी ही आ जाऊंगा।"

सीमा ने मेरे जाने की बात पर ध्यान न देकर पूछा, "डॉक्टर साहब क्या कह रहे थे?"

डॉक्टर मिश्रा की सलाह मैंने स्पष्ट बतला दी, "डॉक्टर का कहना है कि बतराजी को कल सुबह अस्पताल में भरती कराना जरूरी है।"

"जैसा तुम ठीक समझो···" सीमा ने कहा। खाना खाकर उसे सांत्वना देकर मैं चुपचाप लौट पड़ा।

११

सीमा और चन्नी को असहाय अवस्था में छोड़कर आने के बाद मुझे एक पल के लिए भी नींद नहीं आयी। सीमा के आग्रह के बिना उसके पास ठहरना मुझे किसी तरह तर्कसंगत नहीं लगा था, हालांकि वह इतनी भयकर परिस्थिति थी कि सीमा के अनुरोध के बिना भी ठहरा जा सकता था।

खैर, किसी तरह रात कटी, दिन निकला। मैं जल्दी से तैयार होकर अस्पताल पहुंच गया। डॉक्टर मिश्रा अभी अपने क्वार्टर मे ही थे। मैंने उन्हे बतरा की हालत के बारे में बतलाया कि रात एक बजे तक मरीज की हालत में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था। हां, गले से निकलनेवाली घरघराहट में थोड़ा अन्तर जरूर हुआ था।

डॉक्टर मिश्रा ठोड़ी पर हाथ रखे कुछ क्षण सोचते रहे और बाद में बोले, "देखिये वर्माजी, मरीज की हालत तो 'होपलेस' ही होती जा रही है। 'लेफ्ट' का हिस्सा 'पैरेलाइज्ड' हो जाने के बाद, बस वक्त ही खिंचता है ज्यादातर मामलों में। मगर यह भी सही है कि मरीज को जो भी ज्यादा-से-ज्यादा राहत दी जा सकती है, वह हॉस्पिटल में ही मुमकिन है।"

मैंने डॉक्टर मिश्रा को बतरा के घर की परिस्थिति से परिचित कराना जरूरी समझा, क्योंकि दोनों लड़कियां उसके अस्पताल पहुंच जाने के बाद घर में अकेली नहीं रह सकती थीं। मैंने डॉक्टर के सामने दूसरी समस्या भी रख दी, "डॉक्टर साहब, बतरा बेहोशी की हालत में हैं, उन्हें छत से

नीचे उतारना एक 'टीडियस प्रॉब्लम है। स्ट्रेचर से उतारना भी ज्यादा सम्भव नजर नही आता।"

डॉक्टर मिश्रा वास्तव मे एक बहुत सहृदय चिकित्सक निकले। बोले, "आप एक मिनट ठहरिये। मैं मरीज को छत से नीचे लाने के बारे में अभी एक जगह बातें कर देखता हूं।"

डॉक्टर मिश्रा उठकर दूसरे कमरे मे चले गये और कही फोन करने लगे। चार-पांच मिनट बाद लौटकर बोले, "मैंने 'सिविल डिफेन्स' के दफ्तर को फोन कर दिया है। 'एम्बुलेंस' तो आप हॉस्पिटल से ले जाइये। 'एम्बुलेंस' उधर से ही चली जायेगी। वहा हमेशा कुछ-न-कुछ 'होम गार्ड्स' मौजूद मिल जाते हैं। 'सिविल डिफेन्स' वालों के पास 'इमरजेन्सी' मे मरीजों और घायलों को छतो से नीचे लानेवाले 'एफीशियेन्ट' और ट्रेंड होम गार्ड्स' भी रहते हैं।"

जब मैं 'सिविल डिफेंस' के कार्यालय से होम गार्ड्स को साथ लेकर बतरा के घर पहुचा तो लगभग दस बज रहे थे। साथ आये लोगों को मकान के द्वार पर छोड़कर मैं तेजी से ऊपर गया और बतरा की हालत देखी। उसके गले से इतनी भयकर आवाजें निकल रही थी कि सुनकर मन घबराने लगता था। चन्नी बहुत बुरी तरह बिलख रही थी और सीमा उसे धैर्य बधाने का असफल प्रयास कर रही थी।

मैंने सीमा से कहा, "जरा जल्दी करो, नीचे 'एम्बुलेंस' आयी खडी है। हम लोग बतरा जी को फौरन अस्पताल लेकर चलते हैं। वहां इन्हे ठीक दवा भी मिलेगी और हर समय डॉक्टरों की देखरेख में रहेंगे।"

फिर मैंने इधर-उधर निगाह डालकर यह जानने की कोशिश की कि अस्पताल के लिए क्या-क्या सामान घर से ले जाना जरूरी है। मैंने सीमा को ताकीद की, "देखो, एक भगोना, एक-दो प्लेट-प्याले, स्टोव-चम्मच वगैरह किसी कंडी में रख लो। बतराजी के बिस्तर के अलावा एक बिस्तर तुम अपने और चन्नी के लिए भी ले चलो, तुम लोग फिर यहा कहां आती फिरोगी ?" यह कहने के तुरन्त बाद मैं नीचे की ओर लपका।

'होम गार्ड्स' ने मेरे पहुंचते ही स्ट्रेचर और रस्सियों का पुलिन्दा उठाया और सहन मे आ गये। मैंने उन सबको लकड़ी की सीढ़ी से सतर्क

किया, तो वे 'एम्बुलेंस' में से एहतियात के लिए रखी गयी लोहे की नसैनी उठा लाये। उन्होने लोहे की सीढ़ी सहन में दीवार के सहारे खड़ी की और लोहे की चादर से बना स्ट्रेचर ऊपर छत पर पहुंचा दिया। इसके साथ ही कई आदमी छत पर चले गये और उन्होने दो-तीन मिनट मे ही देवीदयाल बतरा को स्ट्रेचर पर लिटाकर रस्सियों के सहारे नीचे पहुंचा दिया। देवीदयाल को ऊपर से उतारकर एम्बुलेंस में पहुंचाने तक होम गार्ड्स ने दस-बारह मिनट का समय भी मुश्किल से ही लिया होगा।

सीमा और चन्नी ने एक बिस्तर, स्टोव और बर्तन लाकर एम्बुलेंस में रख दिये। लेकिन मुझे यह तय करना कठिन पड गया कि चन्नी और सीमा को भी इसी समय अस्पताल ले जाना चाहिए या नही। अन्त में मैंने सीमा से ही पूछा, "क्या तुम दोनों अभी देवीदयाल जी के साथ चलना चाहती हो या बाद मे अस्पताल पहुंचोगी।"

सीमा दृढ़ स्वर में बोली, "बाबा के साथ ही जायेंगी, अब हमारा इस घर में क्या पडा है?"

इस समय तक एम्बुलेंस को घेरकर कई पडोसी, बच्चे तथा औरतें खडी हो गई थी। उन्हें यह पहली बार पता चल रहा था कि उनका पडोसी इतनी बुरी हालत मे है कि उसे अस्पताल मे गाड़ी लेने आयी है। कई औरतों ने सीमा और चन्नी के प्रति सहानुभूति भी दिखलाई। एक-दो प्रौढ स्त्रियां अस्पताल साथ चलने को भी तैयार दिखाई पड़ीं, मगर मैंने एम्बुलेंस में भीड़ एकत्र करना ठीक नही समझा।

सीमा ने उन टूटे-फूटे किवाड़ों की सांकल बन्द करके ताला लगाया और एम्बुलेंस में आकर बैठ गयी। चन्नी देवीदयाल के पास पहले ही आकर बैठ गयी थी।

जिस क्षण एम्बुलेंस का 'एंजिन' घरघराकर एक धचके के साथ आगे बढा, न जाने क्यों मेरी आंखें नम हो आयीं। मुझे लगा, लड़कियां चाहे अभी भी कठोर यथार्थ से परिचित न हों, मगर मैं सचाई को अब अनदेखा नहीं कर सकता।

उसी दोपहर देवीदयाल की रीढ़ को पंक्चर करके पानी निकाला गया, और हर प्रकार की उपयुक्त सुविधा दी जाने लगी। मगर

ने उसकी हालत के बारे में कोई टिप्पणी नही की। देवीदयाल को 'जनरल वार्ड' में भर्ती किया गया था, मगर फिर 'इमरजेन्सी' मे पहुंचा दिया गया।

सीमा और चन्नी को डॉक्टर मिश्रा ने अपने कम्पाउंड में ही रहने के लिए एक कमरा दे दिया। यही नही, उन्होने चन्नी और सीमा के खाने की व्यवस्था भी फिलहाल अपने ही घर मे कर दी।

अगले दिन सुबह तक भी देवीदयाल की हालत में कोई सुधार नजर नही आया, बल्कि उसे 'ऑक्सीजन' भी दी जाने लगी। दोपहर तक तो हालत और भी ज्यादा बिगड गयी। डॉक्टरों ने सीमा और चन्नी को देवीदयाल के पास नही जाने दिया।

इस अफरा-तफरी और भाग-दौड मे मुझे इतना समय भी नहीं मिला कि मैं डॉ० राव की स्थिति जान सकूं या उन्हे देवीदयाल की बीमारी की सूचना दे सकू।

देवीदयाल के पास जब डॉक्टरों की आवाजाही और नर्सों की भाग-दौड़ बहुत बढने लगी तो मुझे ध्यान आया कि मुझे डॉक्टर साहब को तुरंत सूचित करना चाहिए।

मैंने रिक्शा लिया और राव साहब के क्लीनिक पहुच गया। कम्पाउण्डर से भेंट हुई तो उसने बतलाया कि डॉक्टर साहब अभी तक घर से नही आये हैं। उसने यह भी शका व्यक्त की कि डॉक्टर साहब आज आना टाल भी सकते हैं, और यह भी बतलाया कि डॉक्टर राव की पत्नी एक हफ्ते पहले अपनी बहन की शादी मे सम्मिलित होने आगरा गयी थी। डॉक्टर साहब को बाद मे जाना था, मगर बाद मे डॉक्टर साहब के साथ दुर्घटना हो गयी तो वे नही जा सके। एक या दो दिन मे मेम साहब अकेली लौटने वाली हैं। डॉक्टर साहब ने अपने चोट लगने की खबर मेम साहब को नही भेजी कि कहीं वह घबराकर शादी से पहले ही न लौट आयें।

मैंने उनके कम्पाउंडर नरसिंह से कहा कि भाई, मुझे डॉक्टर राव से तत्काल मिलना जरूरी है। कोठी का पता मिल जाय तो मैं उनसे वही मिल लूंगा।

नरसिंह ने डॉक्टर राव को फोन पर सूचित किया कि मैं उनसे फौरन मिलना चाहता हूं। फोन करने के बाद नरसिंह क्लीनिक के बाहर गया और एक रिक्शा रोककर उसने मुझे उसमें बैठने को कहा। रिक्शे वाला डॉक्टर राव की कोठी का पता जानता था।

जब मैं डॉक्टर साहब से मिलने पहुंचा तो वे अपने 'बेड रूम' में बिस्तर पर लेटे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। उनके चेहरे और सिर पर पट्टियां बंधी हुई थीं। एक कन्धे पर 'बेलेडोना प्लास्टर' की लम्बी पट्टी चिपकी हुई थी। डॉक्टर राव कई तकियों का सहारा लेकर अधलेटे पड़े थे। मुझे आया देखकर उन्होंने हाथ उठाकर 'विश' किया। उनके निकट पहुंचकर मैं एक कुर्सी पर बैठ गया और उनकी तबियत के बारे में मालूम करने लगा।

डॉक्टर के ऊपर वारदात का कोई विशेष प्रभाव नजर नहीं आ रहा था, वे खुश लग रहे थे और हंसकर बतला रहे थे, "कम्बख्तों ने मुझे अंधी गली में, बगैर सोचे-समझे घेर लिया। दरअसल एक उम्र ऐसी बेहूदा होती है, जब आदमी बहुत 'जेलस' (ईर्ष्यालु) होता है और किसी को भी अपना दुश्मन मान बैठता है। छोकरों ने अंधेरे में वार किये और फौरन भाग खड़े हुए। यह वही छोकरे थे जो बतरा की गली के बाहर गोल बनाकर खड़े रहते थे।"

एकाएक डॉक्टर राव ने अपनी चोटों की बात बीच में ही छोड़कर पूछा, "क्या इस दौरान किसी दिन बतरा के घर जाना हुआ ! मैं तो उस रात के बाद वहां जा ही नहीं पाया।"

मैंने डॉक्टर राव को पूरी परिस्थिति बतलाई और यह भी बतला दिया कि मैं सीधा अस्पताल से आ रहा हूं। डॉक्टर राव मेरे मुंह से सारी कैफियत सुनकर एकाएक गम्भीर हो गये। कुछ सोचते हुए बोले, "लेफ्ट साइड' पर फालिज 'फैटल' (सांघातिक) ही समझिये। 'हमरज' भी हो सकता है ! क्या कहा जाय, यह बड़ी भारी बदकिस्मती की बात हुई !"

डॉक्टर ने पलंग में लगा एक बटन दबाया तो एक आदमी अन्दर से निकलकर आया। डॉक्टर राव ने उससे दो प्याले चाय बनाकर लाने के लिए कहा और मेरी तरफ मुखातिब होकर बातें करने लगे; "समझ में

डियर,

मुझे बहुत ही जरूरी काम के सिलसिले मे इधर आना पड़ा है। सिर्फ हफ्ते भर की छुट्टी मिल पायी है। काम क्या है, यह तुझे बताने की जरूरत नही है। यार, बहुत-सा काम पड़ा है···कल मैं कोर्ट गया था, पता चला तेरा वहा पहुचने का इन दिनों कोई ठिकाना ही नही है। उम्मीद है, कल तू किसी भी तरह मेरे सामने होगा।

तेरा ही
राजेश

राजेश का पत्र पढने पर मुझे उस जरूरी काम के बारे मे कुछ जानना बाकी नही रहा, निश्चय ही वह मीनू की शादी के 'सिलसिले मे आया था! पिछली बार आया था तो केसरी साथ था हाँ, लेकिन मुझे यह आशा नही थी कि स्थिति इतनी जल्दी पूर्णता तक पहुँच जायेगी।

पत्र हाथ में लिये मैं कई क्षण स्तब्ध खड़ा रहा। मेरे लिए यह तय करना आसान नहीं था कि मैं राजेश से मिलने जाऊं या नही। जाने का स्पष्ट अर्थ यह था कि राजेश, मेरी इन दिनों की मानसिक स्थिति से परिचित न होने के कारण मुझे अपनी व्यस्तताओं में शामिल करना चाहेगा। उधर बतरा की हालत अब-तब हो रही थी, सीमा और चन्नी अलग अधर में लटकी हुई थीं।

नौकर झाड़ू हाथ मे पकड़े आया और मुझसे बोला, "आप थोड़ी देर उस तरफ बैठ जाइये! कमरा भी खाली है, सारे बाबू लोग कई दिनों से आपको याद कर रहे है। मैं अभी बस पांच मिनट मे सफाई कर दूगा", उसने फर्श पर झाड़ू चलाते हुए कहा, "पांच-छह दिन झाड़ू नही लगी तो सबमें गर्दा ही गर्दा हो गया है।"···

मैने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। राजेश का पत्र जेब के हवाले किया और आलमारी से कपड़े निकालकर नहाने चला गया। जब मै नहा-धोकर लौटा तो मैंने देखा रमलू ने न केवल फर्श साफ कर दिया है, बल्कि गीले कपडे से पोछा लगाकर उसे शीशे की मानिन्द चमका भी दिया है। मुझे देखकर बोला, "वकील साब, आपके लिए चाय ले आऊं?"

हालांकि मेरे पास चाय पीने का समय नहीं था, पर मैं उसका आग्रह

देखकर ना नहीं कर सका। मैंने कहा, "तुम मेरे और अपने लिए भी जल्दी से चाय ले आओ, "देखो, देर बिल्कुल न करना, मुझे अभी एक जगह जरूरी काम से पहुंचना है। पांच मिनट से ज्यादा नही लगने चाहिए, किसी भी हालत मे!"

जब तक मैंने कपड़े-वपड़े बदले, रमलू चाय ले आया। मैंने अभी चाय का एक घूट भी नहीं लिया था कि मेरे मुंशीजी आ गये। उनके चेहरे पर काफी तनाव था। अधेड अवस्था के दुनियादार आदमी थे। जिस वकील के साथ पहले थे, वे बयासी साल की उम्र मे मरे थे, उनके साथ लगभग बीस-बाईस साल जुडे रहने के कारण मेरे मुंशी मे पूरा खांटीपन आ गया था। वह यह किसी तरह बरदाश्त नही कर पाते थे कि मैं स्कूली छोकरे की तरह कोर्ट से चाहे जब गायब हो जाऊं। उनका खयाल था, ऐसे वकील के पास फिर मुवक्किल आना बन्द कर देते हैं। और मैं था कि अभी भी कोर्ट की जिन्दगी और उसके व्याकरण मे अट नही पा रहा था।

मुंशीजी कुछ कहते, इससे पहले ही मैं शुरू हो गया, "मुंशीजी, आज मैं एक जरूरी काम मे फंसा हूं। आज की तारीख के केस, महाराज सिंह से कह देना, वही देख लेंगे।"

मेरी बात से मुंशीजी को कोई आश्वासन नही मिला, मगर वे कुछ बोले नही। मैंने चाय का प्याला उठाकर उनकी ओर बढ़ा दिया। चाय पीते हुए वे मुझे दो-एक और नये मुकदमों की बाबत बतलाते रहे, जो उन्होंने मेरी अनुपस्थिति मे अपने कौशल से झटक लिये थे। मैं उनकी बातें सुन जरूर रहा था, लेकिन मेरे भीतर विचित्र द्वन्द्व मचा हुआ था, पता नही, अस्पताल में बतरा का क्या हाल हो और सीमा तथा चन्नी किन परिस्थितियों में घिरी हों!

रमलू ने देखा कि चाय मैंने मुंशी को दे दी है तो वह बोला, "मैं एक प्याला चाय दौड़कर आपके लिए ले आऊ?"

मैंने वक्त देखकर कहा, "अब चाय-वाय छोड़ो। और हां, ताला भी तुम्ही बन्द कर देना, मैं चल रहा हूं!"

मैंने दरवाजे मे लटके हुए ताले से चाभी निकालकर जेब में डाल ली। रमलू के पास ताले की दूसरी चाभी थी ही। मैं चलते हुए बोला, मुंशीजी,

अस्पताल मे एक मिलने वाले साहब भर्ती हैं।" और इसी समय मुझे खयाल आ गया कि बतरा तो हमारा मुवक्किल भी है, मुंशीजी तो उसे जानते हैं। मैंने मुशी को बतलाया, "वह एक हाथ वाले बतराजी बहुत बीमार हैं। सरकारी अस्पताल मे भर्ती हैं। मैं उनके पास ही जा रहा हूं। मौका मिला तो मैं थोडी देर के लिए कचहरी की तरफ आऊंगा।"

मुशीजी ने चाय का खाली प्याला मेज पर रखते हुए आश्चर्य व्यक्त किया, "अय, वह बेचारा इतना बीमार है? जभी तो मैं कहूं कि वह इतने दिनों तक कचहरी कैसे नही आया! किस वार्ड मे है? मैं उसे शाम को देखने चला जाऊगा।"

मैंने मुशीजी की बातो का कोई उत्तर नही दिया और जल्दी से सीढियां उतरकर नीचे सडक पर आ गया। मैंने जेब मे हाथ डाला तो राजेश का खत मेरी अगुलियों से टकराया, लेकिन उसके घर जाने का इस समय कोई प्रश्न ही नही था। मैंने अस्पताल के लिए रिक्शा रोकी और उस पर बैठ गया।

१२

जब मैं इमरजेन्सी वार्ड के नजदीक पहुंचा तो मैंने बाहर बराण्डे से ही देखा कि वहा विशेष सरगर्मी है। नर्सें और 'वार्ड ब्वाय' इधर-उधर भाग-दौड कर रहे थे। मैं झपटते हुए अन्दर पहुचा तो मैंने देखा—बतरा की नाक से ऑक्सीजन देनेवाली नली निकाली जा चुकी थी, और हाथ मे ठुंसी हुई वह सुई भी निकाली जा चुकी थी, जिससे ग्लूकोज उसके शरीर मे पहुचाया जा रहा था।

अनायास मेरे मुह से एक लम्बी सास निकल गयी, "तो खेल खत्म हो गया?" मैंने खुद से ही प्रश्न किया।

कुछ मिनट बाद हॉस्पिटल सुपरिन्टेन्डेन्ट आ गये और बोले, "आप लाश ले जा सकते हैं!" डॉक्टर की निर्लिप्त मुद्रा ने मुझे दहशत से भर दिया। मैं एक मिनट तक मूढ की तरह खड़ा सोचता रहा कि बतरा की

लाश कहां ले जायी जाए! सीमा और चन्नी अभी डॉक्टर मिश्रा के क्वार्टर में ही थी। हालांकि आगे जो कुछ किया जाना था, उससे लड़कियों को कोई खास सरोकार नहीं था, तथापि उन्हें हादसे की सूचना तो देनी ही थी। मैंने अपने जीवन मे ऐसा दुर्दान्त क्षण कभी नहीं भोगा था। सिर में एक चक्कर-सा अनुभव करते हुए मैंने एक खम्भे का सहारा लिया और डॉक्टर से कहा, "लाश अगर बराण्डे में रखवा दी जाये तो बेहतर है, मैं लाश ले जाने के लिए कोई टेम्पो तलाश करता हू।"

मैं वहां से हटकर अस्पताल के बाहर चला गया और एक 'टेम्पो', ड्राइवर से बातें करने लगा। वह तत्काल तैयार हो गया, किसी तरह की सौदेबाजी का भी प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ।

लौटकर मैंने डॉक्टरों से कहा, "अगर दो-एक 'वार्ड ब्वाय' मदद कर दें तो लाश टेम्पो में रखने में सुविधा हो जाएगी।"

वहां कई डॉक्टर-नर्सें और 'वार्ड ब्वाय' खड़े थे। डॉक्टरों ने तीन-चार लोगों से लाश तथा मरीज का अन्य सामान टेम्पो मे रखने के लिए कह दिया। मैं डॉक्टर मिश्रा के घर की दिशा मे चल दिया।

डॉक्टर मिश्रा के घर जाकर मैंने सीमा को खोजा, वह कमरे में ही थी, पर चन्नी डॉक्टर मिश्रा के घर के अन्दर बच्चों के पास थी। मैंने सीमा से कहा, "अभी फौरन चलना है, तुम अपना सामान समेटो, चन्नी को बुलाओ और मेरे साथ आओ!"

मेरी उतावली देखकर सीमा के चेहरे की रंगत उड़ गयी। उसने डरते-डरते पूछा, "बाबा का क्या हाल है? क्या उन्हें अब घर मे ही रखा जायेगा?"

उसकी जिज्ञासा ने मेरा रहा-सहा साहस भी तोड़ दिया। मैं गम्भीर होकर बोला, "सीमा, उन्हें अब कहीं नहीं रखा जाएगा, वे चले गये!"

मेरे शब्दों का सीमा पर बहुत भयंकर प्रभाव पड़ा। उसकी आंखें पथरा गयीं, पूरा चेहरा सफेद और भावशून्य हो गया। मैंने आगे उसे मजबूती से पकड़ लिया, वर्ना वह वहीं धड़ाम से गिर पड़ती। अल्पायु मे अपने सिर से सान्त्वना के आखिरी हाथ का ५८०। भी सहन नहीं कर सकता!

मैंने सीमा की पीठ पर हाथ रखकर रुंधे गले से कहा, "सीमा, इस समय हम लोगों की कठिन परीक्षा की घड़ी आ गयी है। चन्नी बहुत छोटी है। मैं और तुम ही हताश हो जाएंगे तो सोचो, चन्नी की क्या हालत होगी! जो भी कदम उठाना है, सोच-समझकर धैर्य के साथ उठाना है। 'बतराजी' की मिट्टी अस्पताल से लेकर घर चलना है, टैम्पो आया खड़ा है। अभी और भी बहुत से काम निपटाने हैं। दिल मजबूत रखो, हम लोगों को यहां कोई दिलासा देनेवाला नहीं है···"

अपनी बात खत्म करते-करते मेरी आखो मे अनायास आंसू उमड़ पड़े सीमा ने खाली-खाली आंखों से मेरा चेहरा देखा, गोया मुझे पहचान न पा रही हो, और एक आह भरकर बोली, "ठीक है, जो हमारी किस्मत में होना है, वही होगा, मैं चन्नी को बुलाती हूं।"

सीमा ने कमरे में जाकर सामान बटोरा, उसे कडी में रखकर बाहर ले आयी और फर्श पर रखकर मुझसे बोली, "चन्नी डॉक्टर साहब के घर मे है उसे लिवा लाती हूं।"

सीमा ने डॉक्टर मिश्रा के दरवाजे की घंटी बजाई तो चन्नी ही बाहर निकलकर आई। उसके चेहरे पर विषाद की हल्की-सी भी रेखा नहीं थी। उस बेचारी को यह गुमान तक न था कि उसके सिर का आखिरी साया भी इस बीच लुप्त हो चुका है।

सीमा ने बहुत आहिस्ता से कहा, "चन्नी, चलो, घर चलना है, रानी।"

चन्नी ने सीमा से कुछ नहीं पूछा, वह उसी क्षण डॉक्टर के घर से अपनी चप्पल लेने चली गयी। जब चप्पल पहनकर लौटी तो उत्सुकता से पूछने लगी, "बाबा ठीक हो गये?"

चन्नी की जिज्ञासा का किसी ने उत्तर नहीं दिया। वह हम दोनो के पीछे-पीछे चल पड़ी।

जब हम तीनो टेम्पो के पास पहुंचे तो बतरा की लाश टैम्पो में रखी जा चुकी थी। मैंने देखा, वहा कई आदमी टेम्पो को घेरकर खडे बातें कर रहे थे।

मैंने सीमा और चन्नी से टेम्पो में बैठने को कहा और जेबों में हाथ डालकर व्यस्तता से डॉक्टर राव का फोन नम्बर तलाश करने लगा,

लेकिन पता नहीं, डॉक्टर का वह कार्ड कहां गुम हो गया था। सीमा टेम्पो के भीतर पहुंच गयी, मगर चन्नी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह टेम्पो के बाहर मूढ़ की तरह खड़ी इधर-उधर देख रही थी। मैंने चन्नी का कन्धा हथेली से थपथपाकर कहा, "चलो, अन्दर बैठो, देर मत करो! जल्दी घर पहुंचना है!"

बतरा का शव देख लेने के बाद भी चन्नी वास्तविकता नहीं पहचान सकी। जब ड्राइवर ने इंजिन चालू कर दिया, तब कहीं जाकर चन्नी हड़बड़ाती टेम्पो में घुसी। मैंने उसे सहारा देकर चढ़ाया, अन्यथा वह गिर ही पड़ती। टेम्पो में चढ़ जाने के बाद मैंने ड्राइवर को समझाया कि वह भीड़भरे रास्तों को छोड़कर चले।

सात-आठ मिनट में ही टेम्पो गली के नुक्कड़ पर पहुंच गया। टेम्पो को गली में ले जाना असम्भव था। सड़क पर सैकड़ों आदमी आ-जा रहे थे, लेकिन बतरा की मृत्यु से किसी को कोई मतलब नहीं था। मैंने ड्राइवर को बतलाया कि हमें जिस मकान में पहुंचना है, वह गली के भीतर है, टेम्पो अन्दर जाकर 'बैक' नहीं हो पाएगा। ड्राइवर कुछ पल कोई जुगत सोचता रहा और फिर साहस दिखाते हुए बोला, "कोई बात नहीं साब, मैं टेम्पो । कान तक ही ले चलूंगा!"

और उसने टेम्पो गली में घुसा दिया। ठीक मकान के सामने ही पहुंच-कर उसने टेम्पो रोका। उसने मेरे साथ लगकर बतरा की लाश भीतर सहन में पहुंचाई। गली के दूसरे बाशिन्दों ने हमें बतरा का शव ले जाते देखा तो वे भी हमारे पीछे-पीछे सहन में आ गये। टेम्पो में पड़ा हुआ सामान उठाकर सीमा और चन्नी भी मकान के भीतर आ गयी।

मैंने बाहर गली में लौटकर टेम्पोवाले को भाड़ा चुकाया। किराया लेकर ड्राइवर ने टेम्पो को गली में उल्टी तरफ को धकेलना चालू कर दिया, क्योंकि 'बैक' करने के लिए गली में कोई स्थान नहीं था। मैं भी ड्राइवर को सहारा देने के लिए बढ़ा तो और भी कई लोग साथ आ जुटे और टेम्पो को धकियाते हुए सड़क पर ले गये।

उस समय मुझे सीमा और चन्नी की हालत देखने-समझने की कतई फुर्सत नहीं थी। वहां जुड़ आयी भीड़ से मैंने सलाह-मशविरा करके, एक

आदमी को रुपये देकर कफन आदि की व्यवस्था करने के लिए रवाना कर दिया।

इतना करने के बाद मैं तत्काल डॉक्टर राव के क्लीनिक की ओर लपका। वहा पहुंचकर मैंने नरसिंह को सारी परिस्थिति बतलायी और डॉक्टर साहब को फोन मिलाने की बात कही।

फोन पर मैंने डॉक्टर राव को सब कुछ बतला दिया। डॉक्टर ने मुझे आश्वासन देते हुए कहा, "डोंट वरी, मैं ड्राइवर को बुलवाकर अभी गाडी निकलवा रहा हू, आधा घंटा लगेगा, मैं पहुंच रहा हूं, बी ब्रेव !"

मैंने डॉक्टर को रोकने की कोशिश की, "मेरा खयाल है, आप ऐसी हालत मे आने की जहमत न उठायें। अगर रुक नही सकते तो दो-ढाई घटे मे सीधे श्मशान घाट पहुचें, उस हालत मे एक्जर्शन (थकान) कम होगा !"

डॉक्टर कुछ पल चुप रहे और फिर सयत स्वर मे बोले, "तुम वहां एकदम अकेले पड जाओगे। मैं अभी दो-एक लोगो को तुम्हारी मदद के लिए भेज रहा हू।" एक क्षण चुप रहकर वे फिर कहने लगे, "सीमा और चन्नी तो बहुत परेशान होंगी ! उन दोनों को मुर्दघाट मत ले जाना। आग वगैरह का साइट (दृश्य) उनसे बर्दाश्त नही होगा। अच्छा, ठीक है, तुम उधर का देखो, मैं पहुचूगा !"

सीमा और चन्नी ने श्मशान घाट जाने की बहुत जिद की, लेकिन मैंने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर जाने से रोका। इस बीच आस-पड़ोस से कुछ बहुए और औरतें भी आ जुटी थी। जिन्होंने सीमा और चन्नी को धीरज तथा सान्त्वना देने का प्रयास किया।

डॉक्टर राव का कम्पाउंडर नरसिंह तथा उनका रसोइया व माली आ गये थे। सात-आठ आदमी पड़ोस से जुड़ गये थे। आखिर बतरा का शव किसी तरह आखिरी घाट जा ही लगा। डॉक्टर राव भी समय पर पहुच ही गये थे।

उस अभागे आदमी को अन्तिम विदा देकर जब हम लोग लौटे तो सूरज डूब रहा था। डॉक्टर राव किसी तरह गाडी से उतरकर बतरा के घर गये। पड़ोसियों मे से एकाध ने लडकियों को अपने यहां रखने का

प्रस्ताव भी रखा, मगर राव साहब इस बात के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने मकान में ताला डलवाया और मुझे, सीमा तथा चन्नी को अपने घर ले गये।

दोनों लडकियां सहमी हुई और चुप थीं, उन्हें अपने भविष्य के बारे में कुछ भी आभास नही था। उन्हें जो भी करने को कह दिया जाता, वही करने लगती थी।

रात को डॉक्टर राव ने सबको अपने पास बैठाया। बतरा की मौत के बारे मे उन्होंने एक शब्द भी नही कहा। खाने-पीने का सामान मंगाकर 'डिक्टेटर' के लहजे मे सबको खाने का हुक्म दिया। खैर, खाया तो किसी से क्या जाता, एक तरह से सबने मुह मे, नाम लेने भर को कुछ न कुछ रख लिया।

डॉक्टर साहब ने दोनो लड़कियों को घर के भीतर भेज दिया और नारायण को समझा दिया कि उन्हें घर-परिवार की लड़कियो की तरह समझकर रखे।

रात को जब मैं डॉक्टर राव के घर से चलने लगा तो सीमा-चन्नी बाहर आ गयी। वे दोनो बिल्कुल चुप थी, लेकिन बस गनीमत यही थी कि वे अब पूर्णतया सुरक्षित हाथो मे थी। डॉक्टर राव ने मुझसे कहा, "कल-वल मे तुम्हारी भाभी लौट रही है। थोड़ा वक्त निकालकर कल जरूर आ जाना, तुमसे एक जरूरी सलाह लेनी है!..."

मैंने स्वीकार की मुद्रा में सिर हिलाया और चलने लगा, लेकिन तभी मेरी आंखें सीमा की आखों से जा टकरायी। उसकी आखों में संजीदगी के साथ-साथ एक बहुत गहरा दर्द भी तैर रहा था। मैं बेझिझक उसकी तरफ बढ गया और उसके कधे पर हाथ रखकर बोला, "सीमा, भाग्य ने जो चाहा, वही हुआ! हममे से किसी ने भी यह उम्मीद नही की थी कि सारा कुछ इतनी जल्दी टूटकर बिखर जाएगा। पर चलो, जो होना था, वह तो अब हो ही गया! तुमने और चन्नी ने जिस धीरज और बहादुरी का उदाहरण सामने रखा, वह मेरे मन में तुम्हारे लिए गहरे आदर की भावना भर गया है। अब तुम अपने ही घर मे और अपने ही लोगों के बीच हो। अब मैं जा रहा हूं, लेकिन कल जरूर आऊगा!"

सीमा के कन्धे से जब मैंने अपना हाथ हटाया तो उसकी आंखें बहुत धीरे से मेरी ओर उठी। उन आंखो मे दर्द के साथ एक गहरी आत्मीयता भरा विश्वास भी था। मैंने सीमा को पूरे दिन बहुत संयत और आत्म-नियंत्रित देखा था, लेकिन मेरे स्पर्श से उसकी आखें अनायास छलक उठी।

मैंने सीमा के गले मे पड़े दुपट्टे के छोर से उसके आसू धीरे से पोछ दिये और स्नेह डूबे स्वर मे बोला, "रात को सोने की कोशिश करना, तुम्हें बगैर सोये हुए कई रातें हो चुकी हैं।"

उसने एक आज्ञाकारी बच्चे की तरह पलकें झपकाकर मेरी बात मानने का वचन दिया।

जब मैं डॉक्टर राव के घर से बाहर निकल रहा था तो मुझे यह तनिक भी सच नही लग रहा था कि बतरा जो बादशाह, वजीर और हाथी-घोड़ों के लाव-लश्कर लेकर बराबर एक लड़ाई लड़ता रहता था, अब इस दुनिया मे नही है। मुझे लगा, वह मुझसे पूछ रहा है, "क्या आप बता सकते हैं कि मैं यहा क्यो हू?"

मैंने जोर से सिर झटक दिया, मानो मैं उसके सवाल से कतराकर निकल जाना चाहता था।

१३

रात को डॉक्टर राव के यहां से लौटा तो तन-मन बुरी तरह बिखरा हुआ था। पिछले दो दिन भयानक दुःस्वप्न-जैसे बीते थे। मेरी आंखो में निराश्रित लड़कियों की तस्वीरें घूम रही थी। सीमा यों तो खासी समझदार थी, मगर आखिर थी तो लड़की ही, और उस पर उसकी शिक्षा भी एकदम अधूरी थी। मैंने सोचा कि कल मैं डॉक्टर के यहां नही जाऊंगा, हालांकि उन्होंने अगले दिन पहुंचने का बहुत अनुरोध किया था। मैं यह निश्चय करके बिस्तर पर लेटा कि कल सुबह की गाड़ी पकड़कर गांव

चला जाऊंगा और मनःस्थिति बदलने पर दो-चार दिन बाद लौट आऊंगा।

लेकिन अगले दिन गाव जाने का प्रोग्राम अपने आप ही मुल्तवी हो गया। सुबह किवाड़ खोलते ही रमलू ने मुझे एक निमंत्रण-पत्र पकडा दिया। धड़कते दिल से मैंने लिफाफे से चिकना और रंगीन कार्ड निकाला वह मीनू और केसरी के प्रणय-सूत्र में बधने की सूचना थी। तारीख देखने से पता चला कि तीसरी शाम को ही बारात आ रही है।

स्थिति अब मेरे लिए स्तब्धकारी नही रह गयी थी, मैं पहले ही अनुमान लगाये बैठा था। फिर पिछले दिन राजेश का खत भी बहुत कुछ स्पष्ट कर गया था।

देर तक मैं कार्ड हाथ मे लिये चुपचाप बैठा रहा। रमलू ने मेरे हाथ मे चाय का प्याला दिया तो मेरी एकाग्रता भग हुई। प्याला हाथ मे लेने से पहले मैंने कार्ड उसे देकर कहा, "मेज पर रख दो!"

चाय खत्म करके मैंने प्याला फर्श पर रख दिया और बाथरूम की तरफ निकल गया। गुसलखाने की दीवार पर लगे आईने में अपना चेहरा देखा तो स्तब्ध रह गया, चेहरे पर बेतरह दाढ़ी उगी हुई थी और आखें इस तरह चढी हुई थीं, गोया मैंने पिछली रात खूब छककर शराब पी हो!

मग मे पानी लेकर मैंने मुह धोया और तौलिये से कपडों की गर्द झाड़ते हुए बाहर आ गया। इसी समय रमलू एक चिट्ठी और लिये आया और मेरे हाथ मे एक पुर्जा पकड़ाते हुए बोला, "मैं इसे देना तो भूल ही गया था, कल दोपहर एक बाबू आये थे और यहीं बैठकर यह चिट्ठी लिखे थे।

मैंने एक छोटे कागज पर पेंसिल से लिखी हुई बहुत महीन इबारत पढ़ी—

"तू साले, बडा आदमी हो गया लगता है! तीन दिन हो गये, मुझे झक मारते हुए। तीन दफा मैं खुद आया, तीन-चार बार आदमी भेजा। क्या तू जहन्नुम रसीद हो गया है? आज शाम तक भी अगर न पहुंचा तो समझना, तेरी खैर नही!

तेरा दुश्मन

कितनी गजब की अधिकार भावना थी, राजेश की इन चन्द सतरों में! लेकिन वह इस बात से बिल्कुल बेखबर था कि उस घर में सहज भाव से जाना अब मेरे लिए पूरी तरह असम्भव हो गया था। वहां की भीड-भाड, उत्सव, गाजे-बाजे, सब मुझे अपमानित करनेवाले ही थे, बहुत-सी सवालिया लक्ष्मण-रेखाओं को पार करके ही वहा पहुंचना सम्भव था।

राजेश का खत मैंने अनजाने में दोबारा भी पढ डाला। पिछले पन्द्रह वर्षों के समान्तर चलती मीनू की भिन्न-भिन्न आकृतियां मेरे मस्तिष्क में आकर एकत्र हो गयी। मीनू के साथ समय-समय पर जो बातें हुआ करती थी, वे भी अक्षर-अक्षर करके याद आने लगी।

लेकिन वह गुजरे वक्त की कहानी थी, अब समय का देवता मुझ पर मेहरबान नही रह गया था। मैंने न शेव बनायी न नहाया, बस कमरे का ताला लगाया और खट-खट सीढ़ियां लांघते हुए सडक पर पहुंच गया। जहा भी मुझे रिक्शा मिला, मैंने ले लिया और राजेश की गली का नाम बताकर उसमे अवसन्न-सा बैठ गया। रिक्शा-पुलर भीड़भरे बाजारों से गुजरा तो मुझे सडको पर आदमी-औरतों के सिर-ही-सिर नजर आने लगे, लेकिन आकृतिया मेरी दृष्टि से ओझल हो गयी। मैं हर दिशा से इतना लापरवाह और उदासीन हो गया कि शायद कोई बडी-से-बड़ी दुर्घटना भी उस समय मुझे विचलित न कर पाती।

राजेश की 'लेन' के बाहर ही मैं रिक्शे से उतर पड़ा। पैसे चुकाकर डगमगाते कदमो से राजेश की ड्योढ़ी की तरफ बढने लगा। बाहर बड़े दरवाजे पर बिजली की फिटिंग हो रही थी और बीसियों आदमी व्यस्तता से कई तरह की व्यवस्थाओ मे जुटे हुए थे। मैंने गली पार करके मकान के द्वार में घुसते हुए महसूस किया कि वहा खडे किसी भी आदमी ने मेरा नोटिस नहीं लिया। वहा जितना भी हुजूम इकट्ठा था, किसी-न-किसी रूप मे हर कोई अपने महत्त्व का प्रदर्शन कर रहा था। मैंने हर दृष्टि से अपने को फालतू पुर्जे-सा अनुभव किया।

मेरे चेहरे पर शायद मनहूसियत और गम्भीरता की गहरी पर्तें होंगी कि तभी राजेश ने मुझे देखते ही कहा, "क्या मुर्दघाट से चले आ

रहे हो ?"

"यही समझ लो ! आखिर मुर्दघाट भी इसी जमीन पर है, लोग उधर भी बेरोक-टोक जाते ही रहते हैं !" मैंने राजेश की खीझ से अप्रभावित रहते हुए कह दिया।

राजेश ने अपनी आंखें तिरछी करके मुझे एक पल गौर से देखा और बोला, "अच्छा फिलॉसफर साहब, ठीक है, आप जहा से आ रहे हैं वही से सही ! मीनू आपके बारे में डेढ़ सौ बार मुझसे पूछ चुकी है, मैंने तो कह दिया कि...मर गया ! अब आप जाकर बतला दीजिए कि सीधे नरक लोक से वापस चले आ रहे हैं !"

उस समय कुछ भी बक देने का पागलपन मेरे सिर में घुमड रहा था, लेकिन मैंने राजेश की बात का कोई उत्तर नही दिया। उसे बाहर के लोगो के बीच उलझा छोडकर मैं मकान के भीतर चला गया। मीनू के सारे शरीर पर उबटन का लेप पुता हुआ था, मुझे यह देखकर खासी हैरानी हुई कि इतना पढ-लिखकर भी मीनू गांव की अल्हड लड़की की तरह परम्परागत रीति-रिवाजो का सहज निर्वाह कर रही थी। मीनू को उसकी कई सहेलिया घेरकर खड़ी थी और जोर-शोर से हसी-मजाक चल रहा था।

उस सारी भीड़ के पीछे खड़ा मैं सर्वथा उपेक्षित और अनाहत था। मैं दो-तीन मिनट वहां खडा रहा। शायद विवाह सम्बन्धी किसी रस्म को पूरा किया जा रहा था, कुछ औरतें घरेलू गीत गाने लगी तो मैंने वहा से चुपचाप खिसकने की सोची। ठीक इसी पल, पता नही कैसे, मीनू की आखें मुझ पर केन्द्रित हो गयी। उन आंखों मे निश्चय ही एक खोजी दृष्टि थी। मेरे लिए सहसा हट जाना सम्भव नही रहा।

मीनू उस भीड के घेरे को तोडकर एकाएक मेरी तरफ आ गयी और धीरे से अत्यन्त कोमल स्वर मे सरगोशी में पूछने लगी, "क्या इस समय भी नाराजगी नहीं छोड़ोगे ? मैंने कितनी बार बुलवाया, क्या जान-बूझकर ही भागते रहे ?"

मीनू की स्थिर आंखों मे उभरते प्रश्न को टालते हुए मैंने कहा, "अब इसको तय करने की संगति भी क्या रह गयी है ? कौन किससे खुश या

नाखुश है, यह अब बहुत दूर की बातें है। राजी या नाराजी तो उन रिश्तो को लेकर होती है, जो लोगों को कहीं जोड़ते हो, जब पहचान ही खो रही हो, तो शब्दो मे क्या बाकी बचता है, मीनूजी ?"

मेरे 'मीनूजी' सम्बोधन से मीनू तडप-सी उठी, उसने यह भी चिन्ता नही की कि हम दोनों से थोड़ा ही हटकर कितनी ही लड़किया और औरतें खड़ी हैं जो हम लोगो के बीच हो रहे वार्तालाप को बहुत आसानी से सुन सकती हैं। वह आहत स्वर मे बोली, "आपने अपनी तरफ से देर करके जो ज्यादती की है, मुझसे जो भागते रहे हैं, उसका भी दोष मेरे सिर पर डाल देने से अगर आपको सन्तोष हो तो वही सही ! आदमी ने औरत को हमेशा इसी तरह दंडित किया है, अपराधी ठहराया है !"—अपने शब्दों और भावनाओं पर जबरदस्त नियन्त्रण रखने के बावजूद मीनू की आंखों से भीगापन बह निकला।

मैं उससे आखें नही मिला सका तो अपनी दृष्टि दूसरी ओर करके इस प्रसंग को यही समाप्त करने की गरज से कहा, "यह बहस करने की घड़ी नही है ! मैंने क्या किया, तुमने क्या चाहा और क्या किया, इसकी कैफियत देने का मुहूर्त अब बीत चुका है। तुम्हारी सहेलिया और दूसरे कई लोग तुम्हारे लौटने के इन्तजार मे उस तरफ खड़े हैं। अब जाओ, रस्मे पूरी करो !"

मीनू अपनी जगह अडिग खडी रही और दृढ होकर बोली, "जो अधिकार चाहते थे, उसे धैर्य के साथ लेने के लिए आगे क्यो नही बढ़े ? सास लेने की तरह जरूरी चीज को तो कोई इस तरह छोड़कर नही भाग जाता !"

मीनू के आरोप से मुझे अपने हाथों लिखी वह बात याद आ गयी जो अन्तिम भेंट में मैंने मीनू को लिखकर दी थी, लेकिन अनेक तरह की भाग-दौड़ मे पड़कर फिर मैं मीनू के पास आ ही कहां सका था ? सारी चीजें कितनी तेजी से, चन्द दिनों मे ही कहां-से-कहां पहुंच गयी थी।

मैंने फिर बात को खत्म करने की कोशिश की—

"क्या हर कोई अपने अधिकार की सीमा को पहचान पाता है ?"

"सीमा ? यह कौन है, मैं नहीं जानती ! आपको भी सीमा को पहचानने की जरूरत नहीं थी—शकिल को पहचानते तो कोई बात बन जाती !"

उसके मुंह से 'सीमा' शब्द नाम रूप धारण कर बैठा, मानो वह मेरे अन्तरतम में गहरे उतरकर पहचान गयी हो कि पिछले कुछ समय से 'सीमा' ही मेरी शक्ति और संघर्ष बनी हुई है। मैं कांप गया। मेरी आंतरिक भटकन मेरे सामने मूर्त हो उठी। उस समय मुझे स्वयं से यह भी पूछने का अवकाश नहीं था कि 'सीमा' और 'मीनू' क्या मेरे लिए दो अलग-अलग सत्ताएं हैं अथवा दोनों एक-दूसरे की पूरक और पर्याय हैं ?···

"यह सब छोड़ो मीनू, आगे की तरफ ही देखना ठीक होगा !" अन्ततः मैंने बात को समाप्त करने की दृष्टि से कहा।

"तो फिर अब भी आने की क्या जरूरत रह गयी थी ?"

"इसलिए कि सूचना मिल गयी थी ! न आता तो शायद तुम्हारा यह स्वरूप देखे बिना जीवन भर चैन न मिलता। अन्दर एक कांटा बिंधा ही रह जाता, जो हर बार चुभता और एक नासूर बना देता !"

"तो मैं कांटा बनकर रही, आपकी आंखों में ?"

"मैं इस अध्याय को समाप्त करना चाहता हूं—तुम बातें बढ़ाना चाहती हो ! जो चीजें स्वतः टूट रही हों, उन्हें जोड़ने का श्रम व्यर्थ है। हम दोनों आज से परस्पर अजनबी बन जाते हैं, जब आगे कभी मिलेंगे तो नये सम्बन्धों की बाबत सोचेंगे। आज इस क्षण को यहीं 'फ्रीज' करके छोड़ देते हैं।"—इसी समय बच्चन की एक पंक्ति मेरे जेहन में उभरी और मैं अनायास बोल गया, "बात पिछली भूल जाओ, दूसरी दुनिया बसाओ···"

मीनू मेरे ठंडेपन से उत्तेजित हो उठी, "क्या हो गया है आपको ? ऐसे तो नहीं थे कभी ! कहां से आ रहे हो ? क्या किसी ने जादू-वादू कर दिया है ?"

मैं उसके सवालों पर हंस पड़ा, "मुझ पर तुम्हारे अलावा किसी और का भी जादू चल जाए तो क्या बड़ी बेजा बात हो जायगी ?"

उसकी आंखों में एक दाहक लपट-सी उठी और वह पागल-जैसी

हंसने लगी। मैं उस तरह की हंसी का स्वागत करने को तैयार नहीं था। अभी जरा देर मे न जाने क्या-क्या काना-फूसी होने लगेगी!

मीनू को मैंने लगभग ठेलकर ही हटाने की कोशिश की और फुसफुसाया, "अगर इस तरह की बातें करोगी तो मैं अभी शहर छोड़कर चला जाऊंगा।"

वह बोली, "अच्छा, मैं जा रही हूं!"

मेरी धमकी ने अपना काम किया। उसने अपने गले में पड़े लॉकेट को बहुत कौशल से खोला और मेरे सामने कर दिया। मैं लॉकेट के भीतर छिपी नन्ही-सी तस्वीर देखकर अवसन्न रह गया। नवीं-दसवीं कक्षा में पढ़ते समय किसी सड़कछाप फोटोग्राफर से बनवाया हुआ फोटो, जो मेरे 'आइडेंटिटी' कार्ड मे लगा था और जिसका सिर काटकर मीनू ने कभी उस पर बन्दर का सिर फिट कर दिया था, वही मेरा 'आई कार्ड' वाले फोटो से निकाला चेहरा मीनू के लॉकेट के भीतर छिपा हुआ था। इसे काटने की भरपूर सजा उसे बचपन के दिनो में मिल चुकी थी, लेकिन मैं कभी नही जान पाया था कि वह चेहरा उसने अपने पास इतने लम्बे समय तक सुरक्षित रख छोडा था।

उस चेहरे को जो न जाने कब मेरा साथ छोड़कर चला गया था, मीनू के लॉकेट मे देखकर मेरी आखें अनायास धुंधला गयी। मैं मीनू को वहीं छोडकर मकान के पिछले रास्ते से निकल गया।

अगर मीनू ने लॉकेट में छिपा वह चेहरा मुझे न दिखाया होता तो शायद मैं मीनू को अपने मन-मस्तिष्क से झटककर फेंक देने में सफल हो जाता लेकिन उसकी भावना की गहराई ने मुझे कसकर बांध लिया।

पता नही, मैं कितनी देर तक निरुद्देश्य भटकता रहा और यह देखकर आश्चर्य मे पड़ गया कि मैं उस शादी की गहमा-गहमीवाले घर को छोड़कर नदी किनारे श्मशान घाट मे जा निकला। मायूसी लोगो को मदिरालय और बदनाम गलियों में खींच ले जाती है, पर मेरी हताशा मुझे इस वीरान जगह पर खींच ले गयी थी।

चारों तरफ गहरी उदासी फैली हुई थी। शाम तेजी से घिरती आ रही थी। लम्बे-चौड़े पीपल के पुराने दरख्त पर बीसियों घड़े बंधे थे और

सैकड़ों चिड़िया शोर मचाकर शाम के झुकते आने की सूचना दे रही थी। आसपास कहीं कोई आदमी नजर नहीं आ रहा था। घाट से लगा तालाब काई से पटा पड़ा था और गेंदे की सूखी मालाए तालाब की जीर्ण-शीर्ण सीढ़ियों पर इधर-उधर फैली पड़ी थीं।

मैं घाट के सीमान्त पर पड़ी पत्थर की एक पटिया पर बैठ गया और असम्बद्ध-सी बातें सोचने लगा। अंधेरा घिरने लगा तो मैं उठकर खड़ा हो गया। चिड़िया अब तक बसेरा ले चुकी थी और उनकी चहचहाहट पत्तों के बीच गुम हो गयी थी, वहां से लौटते समय मेरे जेहन मे कुछ भी स्पष्ट नही था। चलते-चलते मैं न जाने कब और कैसे डॉक्टर राव के दरवाजे पर पहुंच गया।

१४

मैंने डॉक्टर राव की कोठी का द्वार खोला और भीतर पहुंचकर पतली-सी पगडंडी पर चलने लगा। बाहर लॉन मे तीन-चार 'गार्डेन चेयर' और बांस की एक चौकोर मेज पड़ी थी। कुर्सिया खाली पडी थी।

बाहर कोई नजर नही आया तो मैं बराण्डे मे ठहरकर भीतर की टोह लेने लगा। मैंने सोचा कि शायद राव साहब की पत्नी आगरा से लौट आयी हैं। लेकिन बाहर से मुझे इस बात का कोई आभास नहीं मिल पाया। मैंने गलियारे को पार करके उढ़का हुआ दरवाजा खोला और भीतर चला गया।

डॉक्टर राव कमरे में अपने बिस्तर पर बैठे थे। मुझे देखकर मुस्कराते हुए बोले, "तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था, क्या हालचाल हैं? लगता है, आज भी बहुत बिजी रहे हो, दाढ़ी बनाने तक की नौबत नहीं आयी!"

मैंने कहा, "नहीं, कोई खास बात नहीं है। आज सुबह घर से जल्दी निकलना पड़ा और घर लौटने का वक्त नहीं मिल पाया। आप सुनाइये,

क्या हाल है, लड़कियों की 'मेन्टल स्टेट' (मानसिक स्थिति) क्या है अब ?"

"लड़किया 'नॉर्मल' लग रही है। परसों मिसेज लौट रही हैं, तब एकदम ठीक हो जाएगी। उसके आ जाने से इन लोगो को अकेलापन महसूस नही होगा।"

इसी समय उन्होंने अपने तकिये के नीचे से एक 'वेडिंग कार्ड' निकाला और मेरी तरफ बढाते हुए बोले, "बैंक-मैनेजर मिस्टर माथुर की लड़की की शादी है।, तुम्हें तो यह कार्ड शायद पहले ही मिल चुका होगा! शादी में मेरी तरफ से भी कोई 'प्रेजेन्ट' लेते जाना। मिसेज आ गयी तो वही चली जाएगी, वर्ना तुम ही मेरी 'प्रॉक्सी' बोल देना!"

मैंने अभी तक शादी मे सम्मिलित होने के बारे में निश्चित कुछ नही सोचा था। डॉक्टर राव के प्रस्ताव से लग रहा था कि अब मैं शादी में अनुपस्थित रहने के लिए भी स्वतंत्र नही हूं। मैंने डॉक्टर राव से कहा, "ठीक है, जैसी भी सिचुएशन होगी, देख लेंगे। मैं आपका उपहार शादी में जरूर ही पहुचा दूगा।"

डॉक्टर राव ने आश्चर्य व्यक्त किया, "क्या मतलब? तुम तो माथुर की फैमिली के बहुत करीब हो, क्या उन लोगों ने तुम्हे 'इनवाइट' नहीं किया?"

मैंने अपनी गलती महसूस की, मुझे डॉक्टर साहब से यह नही कहना चाहिए था कि मैं आपका उपहार पहुचा दूगा। मैंने बात को संभालने की कोशिश की, "मुझे 'इनवाइट' करने न करने से कोई फर्क नही पड़ता। मुझे वे लोग घर का मेम्बर मानते है।"

"देन ओ० के०" कहकर राव साहब ने पलटकर सिरहाने लगा एक बटन दबा दिया। नारायण आया तो उन्होने कहा, "अखिलेश जी भी खाना खाएगे!"

"मैंने बाबू साब का खाना बना लिया है, सीमा मैनजी ने शाम ही बतला दिया था!" नारायण की सूचना पर डॉक्टर राव बहुत अनाम ढग से मुस्करा पड़े। नारायण जब दरवाजा पार कर रहा था तो उन्होंने उससे कहा, "नारायण, सीमा को इधर भेज देना जरा!"

जब नारायण चला गया तो डॉक्टर धीमे स्वर में बोले, "सीमा अभी भी बहुत अपसेट है। मुझे बतरा ने अपने रिश्तेदारों के बारे में कभी नहीं बतलाया और न कभी मैंने पूछा ही। कुछ 'रिलेटिव्ज' (सम्बन्धी) होंगे तो जरूर लेकिन उनकी जानकारी सीमा को भी नहीं है। अब मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि आगे जाकर इन दोनों का फ्यूचर (भविष्य) क्या होगा ?"

मुझे डॉक्टर राव की बात का उत्तर देने का मौका नहीं मिला, इसी समय सीमा 'ट्रे' में चाय का सामान लेकर आती दिखाई पड़ी। वह गेरुये रंग, चौड़े पाड़ की साड़ी पहने हुए थी। साड़ी उसकी देह पर बहुत भली और आकर्षक लग रही थी। उसके चेहरे पर शान्तिपूर्ण विषाद फैला हुआ था। मैंने एक-दो पल उसका मुखमण्डल बहुत गौर से देखा। डॉक्टर ने उसे ट्रे उठाये देखा तो बोले, "सीमा, तुम भी गजब करती हो! तुम्हें चाय लाने की क्या पड़ी थी ? नारायण और दूसरे लोग तो हैं घर में।"

"वही तो ला रहे थे, मैं इधर आ रही थी तो मैंने कहा, मैं ही ले जाती हूं···"

"अच्छा ठीक है, अब तुम यहीं बैठो! तुमसे एक सलाह लेनी है।" अपनी बात आरम्भ करने से पहले डॉक्टर साहब ने मेरी ओर देखा, और मुझे गम्भीर पाकर अपनी बात कहने लगे, "बात यह है कि हम चाहते हैं, तुम्हारे भाई की खोज-खबर के लिए कुछ भाग-दौड़ की जाए। उसे तो यहां के हालात का कुछ भी पता नहीं होगा! हम लोग हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के अखबारों में 'गुमशुदा की तलाश' कॉलम में तुम्हारी तरफ से एक अपील छपवा देंगे, फोटो भी छप जाता तो ज्यादा आसानी होती, मगर, अब पता नहीं, उसका कोई फोटो तुम लोगों के पास होगा या नहीं!"

एक मिनट चुप रहने के बाद डॉक्टर राव ने सीमा से पूछा, "तुम्हारी क्या राय है, इस मामले में ?"

सीमा ने बारी-बारी से मेरा और डॉक्टर राव का चेहरा देखा और पूर्ववत् गम्भीर रहते हुए बोली, "आप लोग जो भी ठीक समझते हों, कर देखें। उसका मेरे पास तो कोई पता है नहीं। उसने कभी एक कार्ड तक नहीं लिखा। मगर क्या पता, उसे बाबा के मरने का पता चल जाए तो वह"

ही जाए !" अपनी बात समाप्त करते-करते सीमा की आखें छलछला उठी। निश्चय ही वह भाई की खोज के पीछे अपने आश्रयहीन हो जाने को स्पष्ट अनुभव कर रही थी। अच्छा होता, अभी यह बात कुछ दिन उसके सामने और न लायी जाती, लेकिन अब तो तीर हाथ से निकल चुका था।

कमरे मे पल भर के लिए पूरा सन्नाटा छा गया। डॉक्टर राव और मैं चुपचाप सिर झुकाए बैठे रहे। आखिर डॉक्टर ने चुप्पी तोड़ते हुए सीमा को सान्त्वना दी, "सीमा, तुमने जितने हौसले से सारे तूफान को झेल लिया—मैं नही समझता कि वैसा कुछ हो जाने पर मेरी क्या हालत हो जाती ! बड़े-बड़े उम्र-रशीदा भी घबरा जाते हैं, बुरा वक्त आने पर !··· जो हो चुका है, उसे कोई बदल नहीं सकता—जो जा चुका है उसे कोई लौटाकर नही ला सकता। मैं तुम्हारे भाई को जी-जान से तलाश करने की कोशिश करूगा। मिल जाता है तो तुम्हारे सिर पर वह एक बड़प्पन का हाथ रखनेवाला बन जाएगा। नही मिलेगा तो भी कोई बात नही है। यह घर तुम्हारा उतना ही अपना है, जितना मेरा है !"

मैं और डॉक्टर राव चाय पी चुके तो सीमा प्लेट-प्याले समेटकर 'ट्रे' मे रखने लगी। डॉक्टर राव, जिन्होंने उसे चाय लाने पर टोका था, जूठे प्लेट-प्याले समेटते देखकर कुछ नही बोले। जब वह बर्तन उठाकर कमरे से चली गयी तो मुझसे बोले, "सीमा का 'माइंड' अभी बहुत दिनों तक परेशान रहेगा। चन्नी छोटी है, उसमे अभी सोचने-समझने की ताकत नही है, इसलिए जल्दी ही बदल जायेगी। सीमा छोटी-छोटी बातो को सोच-सोचकर दुखी होती रहेगी। अब यही देखो, अगर मैं इसे जूठे बर्तन उठाने से रोकता तो यह समझती कि मैं इसे घर का आदमी नही समझता, मेहमान खयाल करता हूं। इस तरह की और भी बहुत-सी बातें है, जिनका खयाल बराबर रखना पडेगा। दरअसल इस लडकी को 'हैंडिल' करने के लिए बहुत 'डेलीकेट बिहेवियर' (मृदुल व्यवहार) की जरूरत है। कुछ माहौल भी बदलना चाहिए—यानी हसी-खुशी का 'एटमोसफीयर' (वातावरण) मिलना भी निहायत जरूरी है।"

मैंने कहा, "भाभी आ जाएंगी तो सब ठीक हो जाएगा। इन दोनों का अकेलापन बटना चाहिए।"

डॉक्टर ने मेरे विचार से सहमत होते हुए एक ऐसा प्रस्ताव मेरे सामने रख दिया कि मैं एकाएक कोई उत्तर नही दे पाया। वे बोले, "ये दोनों लड़कियां इस घर में भी अकेली ही हैं। क्या यह मुमकिन हो सकता है कि तुम डॉक्टर माथुर की लड़की की शादी में जाओ तो इन दोनों को भी साथ ले जाओ। उस हंसी-खुशी के मौके पर इनका मन थोड़ा-बहुत जरूर बदल जायेगा।" एक क्षण मेरा चेहरा देखने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या खयाल है तुम्हारा?"

डॉक्टर राव के प्रस्ताव से मैं बहुत गहरे असमंजस में पड़ गया। मीनू की शादी मे मैं मात्र दर्शक नही था, और सीमा तो मेरे और मीनू के आपसी सम्बन्ध के बारे मे कुछ भी नही जानती थी। इसके अलावा सीमा, माथुर परिवार से पूर्ण अपरिचित भी थी। मुझे यह विश्वास भी नही था कि कहने भर से वह जाने को तैयार हो ही जायेगी। मुझे कुल मिलाकर डॉक्टर राव का प्रस्ताव बहुत अटपटा-सा लगा। मैं थोड़ी देर उस पर विचार करने के बाद बोला, "अगर सीमा जाने को तैयार हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? यह तो एक अच्छी ही बात है कि इस बहाने वह थोड़ी देर के लिए कही जा सकेगी।"

"तैयार हो ही जायेगी, मैं उससे कह दूंगा! तुम अपने प्रोग्राम के हिसाब से आ जाना।" डॉक्टर राव ने लापरवाही से कहा।

वह बात फिर वही समाप्त हो गयी। डॉक्टर राव ने अब एक दूसरी बात छेड़ी, "एक और मामले मे तुमसे सलाह करना चाहता हूं…"

मैं डॉक्टर राव की गम्भीर मुखमुद्रा से कोई अनुमान नही लगा सका कि वे अब मुझसे किस सम्बन्ध मे सलाह लेने जा रहे हैं। मैं प्रतीक्षा करता रहा कि वे स्वयं ही कुछ कहने वाले हैं। लेकिन जब देर तक वे कुछ नहीं बोले तो मैंने ही उन्हें छेड़ा, "आप किसी मामले में मेरी सलाह चाहते थे…"

"नहीं-नहीं, वह बात इतनी जल्दी की नहीं है, दो-चार रोज बाद आराम से 'डिसकस' की जा सकती है।"

मैंने व्यर्थ के अनुमान से बचने के लिए कहा, "जल्दी ही तो उस पर भी बातें कर लेते हैं। कल के लिए किसी मामले को [illegible]

जाये !"

डॉक्टर राव के चेहरे से गम्भीरता हट गयी और वे हसकर बोले, "सारे फैसले आज ही क्यों किये जाए ? तुम्हारे यहां तो एक-एक केस का फैसला डिकेड्स (दसियों साल) तक नही होता !" फिर बात बदलकर बोले, "पता नही, आज क्या बात है, मुझे कुछ भूख-सी महसूस हो रही है ! क्या वक्त हो गया होगा, मैं समझता हूं, ज्यादा टाइम तो नहीं हुआ होगा अभी !"

मैंने हाथ की घडी देखकर कहा, "भूख का क्या दोष है ? अब रात के साढ़े दस बज रहे हैं। मैं चलता हूं, आप खाना खाइये !"

"इसी उम्र मे इतने जबरदस्त भुलक्कड़ हो गये हो ? तुम्हारे यहा आते ही, नारायण से तुम्हारा खाना बनाने की बात कही गयी थी या नही ? फिर अब रात के ग्यारह बजे हैं, यह बहाना भी काम नहीं कर सकता कि तुम्हें अभी भूख नही है।···इसके अलावा एकदम अकेले हो, कोई पूछनेवाला भी नही बैठा कि खाया है या नही !" डॉक्टर ने मुझे खाने के लिए अटका ही लिया।

मैंने उनकी दलील काटी, "आजकल तो आप भी घर में अकेले ही हैं, क्या किसी का इन्तजार नही करते, इन दिनों ?"

"अरे भई अखिलेश, अब क्या अकेलापन ? हम तो पिंजड़े के पंछी हैं, और पछी भी ऐसे, जिसे उड़ना भी याद नहीं रहा ! हमारा जेलर तो हमें घेरे ही रहता है, वह जब नहीं भी होता, तब भी कैदी इस जेलखाने में ही रहता है।" डॉक्टर ने अपनी बात कहकर कन्धे उचका दिये।

"अच्छा तो आपका जेलर आउट है आजकल ! आने दीजिये भाभी को, मैं उनसे यही कहूंगा।" मैंने उन्हें छेडा।

डॉक्टर राव कुछ कहते, इससे पहले ही नारायण आकर बोला, "खाना लग गया है मेज पर आप लोगन का !" उसकी सूचना सुनकर हम दोनों उठकर खड़े हो गये।

खाने के कमरे में हम दोनो के अलावा और कोई भी नहीं पहुंचा था। डॉक्टर ने नारायण से सीमा और चन्नी को भेजने के लिए कहा तो उसने तत्परता से कहा, "बिटियान को मैंने पैले ही खवा दियो ! भोत मनै करत

रहूँ, पर हमने समझाय के खवा दओ !"

"चलो, बहुत बढ़िया काम किया, तुम्हारी अक्ल भी बड़ी कारआमद चीज है !" डॉक्टर राव के विनोद मे गहरी सहृदयता थी।

खाना खाकर मैं रात को ग्यारह के बाद ही डॉक्टर राव के घर से निकल पाया। सीमा और चन्नी शायद तब तक सोने लगी थीं। बाहर गली भी लगभग सुनसान हो चली थी। कहीं आगे बढ़कर ही रिक्शा मिलने की आशा की जा सकती थी। मैं तेजी से कदम बढ़ाते हुए लम्बी गली पार करने लगा।

चलते-चलते सारे दिन की विचित्र मनःस्थितियां मेरे मस्तिष्क में उमड़ती-घुमड़ती रहीं। मन को कहीं ठहरानेवाले विचार मुझसे दूर-ही-दूर होते चले गये। न जाने कितनी दूर से, 'जागते रहो, जागते रहो' तथा गश्ती पुलिस की सीटी की आवाजें मेरे कानों से टकराती रहीं, सन्नाटे को तोडनेवाली आवाजें सिर्फ मेरे अपने कदमों की थी, मैंने मुड़कर कई बार पीछे देखा, पर कोई भी नही था। सोये पडे वीरान शहर में सड़क पर यों अकेले चलने की थरथराहट मेरे मन में पूरी तरह फैल गयी।

१५

डॉक्टर राव के यहां से घर लौटा तो कमरे में देर तक चक्कर काटता रहा। पता नहीं, वह रात के भारी बोझ जैसे घटे किस तरह बीते !

लेकिन सुबह की गुलाबी किरणें जो खिड़कियों के काच से भीतर आ रही थी, मुझे एक भिन्न आदमी बना गयीं। मैंने निश्चय किया कि आज मैं कही किसी से मिलने नही जाऊंगा, पूरे दिन घर मे ही रहूंगा, कायदे से नहा-धोकर खाऊंगा-पिऊंगा और आराम करूंगा। और यही मैंने किया भी। अगले दिन रविवार होने की वजह से मुझे कहीं पहुंचने की जल्दी नहीं थी। अतएव ढाई बजे तक मैं घर में ही बना रहा।

जब मैं डॉक्टर राव के घर पहुंचा तो मुझे सबसे पहले सीमा दिखाई

पड़ी। उसने बतलाया कि डॉक्टर साहब ने आज सुबह ही कह दिया था कि अखिलजी के साथ सीमा और चन्नी को किसी शादी में जाना है।

मैं डॉक्टर राव के कमरे में पहुचा तो वे मुझे देखते ही बोले, "कल सारे दिन कहा डुबकी लगा गये जनाब? मैंने कल रात काफी देर तक इन्तजार किया, तुम्हारा शाम का खाना भी बनवाया था।"···फिर उन्होंने प्रसंग बदला, "मेरे खयाल से तुम 'रूपम साडी एम्पोरियम' से पहले एक अच्छी-सी साड़ी खरीद लाओ, तब तक सीमा और चन्नी भी तैयार हो जायेंगी।"

मैंने डॉक्टर राव को छेड़ा, "बड़े भाई! साड़ी खरीदने में और दांतों का पेस्ट खरीदने मे क्या कोई फर्क नही है? क्या आपका खयाल यह है कि मैं लगातार साडियां खरीद-खरीदकर शादियों मे उपहार स्वरूप देता रहा हू? साड़ी खरीदने के लिए थोडी-सी समझ भी चाहिए, जिसका मेरे भेजे मे सिरे से अभाव है।"

"कोई बात नही, समझ नही है तो समझ पैदा करनी पडेगी भाई-जान! यह सूझ-बूझ पैदा नही कर पाये तो मेम साहब को कैसे रिझाओगे। जो आदमी जितनी ही जल्दी औरत की पसन्द समझ लेता है, उतना ही सुखी और सन्तुष्ट रहता है, दूसरे मामलों मे चाहे वह पूरा 'डैम फूल' ही क्यों न हो!" अपनी बात कहकर डॉक्टर कौतुक से मुस्कराये और बोले, "क्या समझे हुजूर?"

"क्या आप अपने जाती तजुर्बात की बात बतला रहे हैं? मेरा मतलब भाभी की पसन्द-नापसन्द के अलावा आपके नजदीक दूसरे मामले···"

डॉक्टर राव बोले, "तुम बहुत पाजी आदमी हो! यहां वकालत की दफा कारगर नही होती, श्रीमान जी!"

"चलिये यही सही! लेकिन मेरा सुझाव यह है कि सीमा अगर साथ जाकर कोई साडी चुन ले, तो यह समस्या आसानी से हल हो जायेगी।"

"तुम यही करो, वैसे मैंने 'रूपम' के मालिक को फोन पर बतला दिया है। तुम और सीमा साड़ी पसन्द न भी कर पाओ, तो वह ऐसे मौके पर प्रेजेन्ट में दी जाने वाली कोई मुनासिब साड़ी तुम्हे पैक करके दे देगा।"

मैंने कहा, "तब क्या है, फिर तो कोई सिर-दर्द ही नहीं बाकी रह जाता !"

डॉक्टर राव को एकाएक न जाने क्या सूझी कि मुझसे बोले, "अच्छा एक बात बतलाओ, यानी जरा दिमाग पर जोर देकर सोचो, अगर तुम्हें अपनी 'स्वीट हार्ट' के लिए कोई बढ़िया साड़ी वगैरह खरीदनी पड़ जाए तो क्या करोगे ?"

डॉक्टर राव ने सहज विनोद में ही यह बात कही थी, लेकिन मुझे अजीब-सी तिलमिलाहट होने लगी और मैंने कुर्सी से उठकर कमरे में घूमना शुरू कर दिया।

"यह क्या करने लगे ?" डॉक्टर ने मुझे यों बगैर वजह घूमते देखकर पूछा।

"यों ही जरा !···डॉक्टरों की राय है कि घूमना सेहत के लिए अच्छी कसरत है···"

"अच्छा, तो कमरे को रेस का मैदान बनाकर सेहत बनाने का मुफीद कार्यक्रम चल रहा है आपका ?"

डॉक्टर ने थोड़ी संजीदगी से मुझे अपने नजदीक बुलाकर कहा, "यहां आओ, तुमसे एक बात कहनी है।"

मैंने घूमना छोड़ दिया और उनके पास पलंग पर जाकर बैठ गया। वे क्या कहना चाहते थे, इसका मुझे कोई अनुमान नहीं था। पर जैसे ही वे कुछ कहने के लिए तैयार हुए, सीमा कमरे की तरफ आती दिखायी पड़ी।

सीमा धानी रंग की साड़ी और उसी से मैच करता ब्लाउज पहने थी। सलवार-कुर्ते में वह बहुत छोटी लगती थी, लेकिन साड़ी पहन लेने के बाद एक वयस्क और आकर्षक तरुणी नजर आ रही थी। निश्चय ही यह साड़ी वगैरह डॉक्टर राव की पत्नी के होंगे और राव साहब ने उसको उन्हें पहनने की आज्ञा दी होगी। मैं एक क्षण सीमा को आश्चर्यचकित देखता रह गया। कपड़े आदमी के रंग-रूप को कभी कितना बदल डालते हैं।

डॉक्टर साहब सीमा को देखकर बोले, "लो भई, सीमा तो तैयार भी

हो गयी, तुम बेकार ही पैर पटकते घूम रहे हो !"

जब सीमा और नजदीक आ गयी तो राव साहब बोले, "ठीक है, तुम लोग अब जाओ, साड़ी लेते जाना, और रात को या तो वक्त से लौट आना या वहीं रह लेना !" फिर उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "दस-ग्यारह तक लौट ही आओ तो बेहतर है, शादी के घर मे हो-हल्ला ज्यादा रहता है, आराम नही मिल पाएगा।"

जब मैं उठकर खड़ा हुआ तो डॉक्टर राव का एकाएक ध्यान आया कि चन्नी अभी तक नहीं आयी, वे बोले, "चन्नी कहां है, क्या वह तैयार नही है अभी ?"

सीमा ने झिझकते हुए कहा, "चन्नी आज पुराने वाले पड़ोस मे चली गयी है। उधर की लड़किया हम दोनों से मिलने आयी थी। हमारे शहर के रहनेवालो के कुछ घर उस मोहल्ले मे है। वे परसों दोपहर मे भी आयी थीं। चन्नी को साथ ले जाने लगी तो मैंने जाने दिया।"

डॉक्टर राव के चेहरे पर उलझन दिखलाई पड़ी, "लेकिन...मैंने तो पहले ही कह दिया था कि तुम दोनो को आज शाम एक शादी में जाना है।"

"मैंने चन्नी से कहा था, पर वह मानी ही नही, कहने लगी—मुझे शर्म आती है। इसके अलावा जिन लड़कियों के साथ गयी है, वे उसके साथ स्कूल मे पढ़ती हैं।"

"तब कैसे-क्या होगा, वह लौटेगी कैसे ?" डॉक्टर सोचते हुए बोले।

लेकिन मुझे असली बात समझने में देर नही लगी। अपनी बात कहते समय सीमा के चेहरे पर जो सकोच था, उससे मुझे आभास मिल गया कि उसने ही चन्नी को किसी तरह घर से बाहर भेज दिया है। सीमा और चन्नी दोनो के पास ऐसे कपड़े नही थे कि वे किसी शादी मे सम्मिलित हो सकें। डॉक्टर साहब के आग्रह से सीमा ने उनकी पत्नी की साड़ी पहन ली होगी, लेकिन चन्नी अभी इतनी छोटी थी कि वह साडी तो पहन नही सकती थी, उसके पहनने लायक ऐसे कपडे डॉक्टर राव के घर में थे नहीं, जिन्हे वह शादी के मौके पर पहन सके।

जब मैं और सीमा घर से बाहर जाने लगे तो डॉक्टर बोले, "साड़ी लेते जाना, लेकिन उसका पेमेन्ट न करना, रूपम से मेरा हिसाब-किताब

चलता है और एक साथ ही भुगतान कर दिया जाता है।"

"ठीक है", कहकर मैं सीमा के साथ चलते हुए डॉक्टर साहब की कोठी का लॉन पार करके बाहर सड़क पर आ गया। सड़क से रिक्शा पकड़कर हम दोनों साडी लेने के लिए पहले 'रूपम' में पहुंचे। मैंने रूपम के मालिक से डॉक्टर राव का जिक्र किया तो वह बोला, "मुझे राव साहब ने फोन पर बतला दिया था, आप साड़ियां देखकर पसन्द कर लें।" वह एक थुलथुल मोटा-सा आदमी था। हम दोनों को देखकर उसकी मुखाकृति पर अतिरिक्त विनम्रता छा गयी थी और वह बहुत तत्परता से हमें रिझाने की चेष्टाएं करने लगा था। हमारे अलावा और भी कुछ ग्राहक आ रहे थे उन्हें भी वह लपकने की कोशिश कर रहा था।

खैर, साड़ियों की तह खुलनी शुरू हुई तो मिनटों में साड़ियों का अम्बार लग गया। मेरी जिन्दगी मे तो यह पहला ही अवसर था कि मैं अपने सामने नफीस साड़ियों का इतना बड़ा ढेर देख रहा था। अपने अनाड़ीपन की वजह से मैं किसी भी साड़ी के सम्बन्ध में अपनी कोई राय प्रकट नहीं कर सकता था। हां, उतनी वेरायटी सामने देखकर बौखला जरूर उठा था।

पचासों साड़ियां सामने पड़ी देखकर सीमा ने मुझे अर्थभरी दृष्टि से देखा। मैंने कहा, "सीमा, तुम अपनी पसन्द की कोई साड़ी चुन लो!"

"आप भी तो किसी पर हाथ रखिये!"

"तुम चुन लो, मैं उसी पर हाथ रख दूंगा। देख लेना, मेरी-तुम्हारी पसन्द मे कोई फर्क नही होगा।"

आखिर सीमा ने एक साड़ी को उलटते-पुलटते हुए पूछा, "यह कैसी है?"

"बढ़िया! एकदम नफीस और जानलेवा!"

सीमा सलज्ज भाव से मुस्करा पड़ी। दुकानदार लाला ने चापलूसी-भरे अन्दाज में कहा, "भैनजी की पसन्द बहुत ऊंची है, बाबूजी!"

मैंने कहा, "ऊंची क्यों नहीं होगी लालाजी, आपकी दुकान भी तो बहुत ऊंची है!"

वह 'हें-हें' करके पेट हिलाते हुए हंसने लगा। उसने साड़ी एक गत्ते

के डिब्बे मे ढग से रखवाकर पूछा, "और भी कुछ चाहिए, बाबूजी ?"

मैंने जल्दी से कहा, "और कुछ नही चाहिए, आप इसे फौरन पैक कराइए !" लेकिन सीमा ने मेरी तरफ असमजस मे देखकर पूछा, "क्या इसमे ब्लाउज-पीस नही रखवाएगे ?"

"मुझे क्या मालूम ! क्या वह भी होना चाहिए ?" मैंने अनाड़ीपन से पूछा।

दुकानदार हस पड़ा और बोला, "बाबू साहब को अभी कुछ भी पता नही दुनिया का !"

सीमा ने दुकानदार से कह दिया कि वह साडी से मैच करते हुए कपड़े का एक ब्लाउज पीस भी साडी के साथ ही पैक कर दे।

साडी का पैक किया हुआ डिब्बा हाथ मे लेकर हम दोनो दुकान से निकले तो शाम अभी बहुत गहरी नही हुई थी। बातें करते हुए हम दोनों पैदल ही चलने लगे।

सीमा ने मुझसे पूछा, "यह डॉक्टर साहब ने मुझे आपके साथ क्यों लगा दिया ? मेरी तो उन लोगो मे कोई जान-पहचान भी नही है।"

"पता नही, कौन किसके साथ कहा लग जाता है या लगा दिया गया मालूम पडने लगता है ! बहरहाल, डॉक्टर साहब को शादी की 'गिफ्ट' तो भेजनी ही थी, इसे कौन लेकर जाता ?"

सीमा ने आखें तरेरकर मुझे देखा और बोली, "अच्छा जी, तो शादी की 'गिफ्ट' ले जाने का काम मेरा है ? आप तो मुझे बस रास्ता भर दिखाने जा रहे हैं।"

"और नही तो क्या ! कीमती सामान के साथ एक सेवक तो हमेशा दरकार होता है !"

"अच्छा ! मुझे बनाइये मत, मजाक छोडकर यह बतलाइये कि ये कौन लोग हैं ?"

मैं उसका मतलब नही समझ पाया तो वह बोली, "मेरा मतलब है कि जिन लोगों के यहा आप जा रहे हैं, वे कौन लोग हैं ?"

मैंने मोनू के परिवार से अपनी घनिष्ठता का कोई संकेत सीमा को नही दिया। उसे बतलाने लगा, "इस शहर के अच्छे खासे प्रतिष्ठित लोग

हैं, बहुत भले और सज्जन हैं। डॉक्टर राव के मरीज भी हैं, दोस्त भी हैं, और आगे की दास्तान बेपर्दा ही देख लेना !"

मैंने मुख्य सड़क से एक गली में मुड़ते हुए कहा, "देखो, वह सामने वाली दुल्हन जैसी सजी हुई कोठी ही फिलहाल हमारी मंजिल है।"

रंग-बिरंगी रोशनी के सैलाब में डूबे शादी वाले मकान को बिल्कुल सामने देखकर सीमा हड़बड़ा-सी गयी। उसे अन्दाज नहीं था कि हमें ज्यादा दूर नहीं चलना है।

मैंने उसे 'नर्वस' देखकर दिलासा दी, "अरे सीमा, इसमें घबराने की क्या बात है? जिस शादीवाले घर में हम लोग जा रहे हैं, वहां सब अपने ही आदमी हैं! तुम्हें वहां बेगानापन तो एक पल के लिए भी महसूस नहीं होगा!" मैंने उसके कन्धे पर हल्के से थपथपा दिया।

बराण्डे में घुसते ही मुझे कई परिचितों ने 'हलो-हलो' करके लपकने की कोशिश की, लेकिन मैंने सिर्फ हाथ उठाकर अभिवादन किया और सीमा के साथ आगे बढ़ना जारी रखा।

गलियारा पार करके मैं और सीमा भीतर के कमरे में चले गए। वहां बहुत-सी लड़कियां मीनू को घेरे बैठी थीं। मुझे और सीमा को साथ देखकर वह एक पल के लिए चौंक-सी उठी। मैंने कहा, "ये मेरे साथ सीमा आयी हैं, इनका नाम 'शक्ति' नहीं है! तुमने परसों पूछा था, 'सीमा' कौन है? मैं इसीलिए इन्हें साथ लाया हूं। तुम्हारी मंशा थी कि मैं शक्ति के साथ आता, लेकिन वह मेरा साथ नहीं दे सकी। मेरे साथ सीमा ही आ पायी है।"

कई लड़कियां मेरे लम्बे संवाद पर मुस्कराने लगीं। मीनू ने उत्सुकता से सीमा को भरपूर देखा और कोमल स्वर में बोली, "आओ, इधर आकर मेरे पास बैठो! इनके तुम्हें साथ देखकर मुझे बहुत-बहुत अच्छा लगा। दरअसल मुझे तुम्हारी बहुत ही प्रतीक्षा थी, तुम्हें देखकर न जाने कितना बोझ मेरी आत्मा और मन पर से हट गया।"

मीनू ने पिछली भेंट में 'सीमा' को भाववाचक संज्ञा से निकाल व्यक्तिवाचक बनाकर मुझसे पूछा था, "सीमा? यह कौन है, जानती! आपको भी सीमा को पहचानने की जरूरत नहीं है, म

पहचानते तो कोई बात बन जाती !"

मीनू के साथ हुए उसी दिन के सम्वाद को लेकर मैंने फिर मीनू को छेड़ा और कहा, "सीमा अब तुम्हारे पास ही रहेंगी। यह कौन है, इनका परिचय मैं क्या दूं, हां, यह तुमसे मिलने को बहुत उत्सुक थीं, इसलिए इन्हें साथ लाया हूं। इन्हें तुम जो चाहो बतलाओ, जो चाहो पूछो !"

मेरे और मीनू के इन गूढ शब्दों का अर्थ हम दोनो के अलावा वहां कोई नही पकड़ सका। लड़कियां एक-दूसरे का मुंह देखने लगी, और सीमा चकित दृष्टि से कभी मीनू को देखने लगी, कभी मुझे। उसे कुछ क्षणों पहले तक यह भी पता नही था कि मीनू नाम की कोई लड़की इस दुनिया मे है, जो उसको लेकर इतनी घनिष्ठ बातें कह सकती है।

मीनू ने सीमा को बहुत आत्मीयता से सम्बोधित करके अपने पास बैठने को आमन्त्रित किया, "आओ सीमा, मेरे पास बैठो" और सीमा के हाथ मे डिब्बा देखकर मेरी ओर आखें उठाकर पूछने लगी, "और यह इसमें क्या है।"

सीमा ने तो कोई उत्तर नही दिया, मैं ही बोला, "मैं तो कुछ नहीं लाया हू, जिसने भी भेजा है, उसका नाम इसके भीतर दर्ज है।"

फिर मैं वहां नही ठहरा, तत्काल वहां से चल पड़ा। बाहर लॉन में आकर मैंने देखा, छोलदारिया लगी हुई थी और कायदे से 'डिनर' की व्यवस्था सम्पन्न हो रही थी। सब तरफ आदमी-ही-आदमी नजर आ रहे थे। लग रहा था कि अभी भीड़ और बढेगी ही। कोई भी उस गहमागहमी से तटस्थ नही रह सकता था।

आगे जाकर लॉन के कोने पर एक रावटी लगी हुई थी। मैं उधर ही निकल गया। राजेश ने वहा 'ड्रिंक्स' का सारा सामान इकट्ठा कर रखा था। व्हिस्की, बीयर और अन्य शराबों के 'क्रेट्स' का अम्बार लगा हुआ था। राजेश के कई 'एयर फोर्स' के साथी भी वहां जमा थे। मुझे देखकर राजेश खिल उठा, "आओ चिड़ी···" कहकर उसने मुझे दबोच लिया। मैंने उसकी भयकर पकड़ से छूटने का कोई प्रयत्न नही किया। एक-दो मिनट बाद मुझे अपनी जकड़बन्दी से मुक्त करके राजेश बोला, "क्यों बे, कल कहा मर गया था ? मैंने सब तरफ छान मारा, कही तेरा निशान भी नही

मिला ! एकदम छलावे की तरह गायब हो जाता है।"

मैंने बगैर किसी भावावेश के कहा, "मैं बहुत देर तक तो यहीं था फिर एक जरूरी काम से चला गया था।"

"कोई बात नहीं बेटा, तुझे भी भुगतूंगा, जरा यह किस्सा निपट ले। इस बार तेरा बिहेवियर मेरी समझ में जरा भी नहीं आ रहा है, कुछ दुश्मनी-सी निभा रहा है शायद !

मैंने उसके लम्बे वक्तव्य को लापरवाही से नकारते हुए कहा, "नॉन सेन्स ..."

"अच्छा ठीक है, नॉनसेन्स ही सही !" और राजेश ने एक बोतल की सील हाथों से ऐंठकर तड़का दी और मेज पर लगी गिलासों की लाइन से दो गिलास उठाकर उनमें पैग तैयार करने लगा। तैयार होने पर बोला, "देख, अब तक मैं बरदाश्त करता रहा, लेकिन अब तेरी बत्तमीजी और बरदाश्त नहीं होगी ! मैं बहुत थोडी दे रहा हूं, चुपचाप ले लेना !"

"तुम्हारी बात अलग है राजेश, सारी रात पीते रहोगे तो भी तुम पर कुछ असर नहीं होगा ! मैंने इस चीज को अभी तक अपने पास नहीं आने दिया, और ही गर्दिश कम नहीं हैं ! इसलिए माइ डीयर, मुझसे पीने-पीने का भूलकर भी इसरार न करना। इसके अलावा मेरे साथ एक लड़की भी शादी में आयी है। उसके साथ ही मुझे वापस लौटना है।"

राजेश ने आंखें तिरछी करके मेरी ओर देखा और हल्केपन से बोला, "ओ हो, तो यह कहो न कि जनाब के साथ एक लड़की आयी है, और उसकी नजरों में ऊंचे बने रहने की खास तमन्ना आपके जिगर में पैदा हो चुकी है। बधाई हो, कौन साहब हैं, कहां से तशरीफ लायी हैं...?"

मैंने सख्ती से कहा, "मेरी कोई नहीं हैं। उसके बारे में कोई 'क्यूरिऑसिटी' न रखो तो बेहतर है। बस कोई है, और यहां भी इत्तिफाक से ही मेरे साथ है।"

"ओ० के०, आयम सॉरी ! नो फरदर क्वेरी" कहकर राजेश ने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "क्या मैं तुमसे कोई मजाक भी नहीं कर सकता यार ? तू तो इन दिनों बहुत 'टची' हो गया लगता है, व्हाई आर सो बाइटिंग, बाइ द बे ?"

मैं कोई जवाब देता, इसके पहले ही राजेश के दो-तीन साथी बाहर से आकर बोले, "आ गये वे लोग।"

वास्तव मे बारात दरवाजे तक पहुंच गयी थी। मैं राजेश और उसके मित्रों को वहीं बातें करते छोड़कर बाहर निकल आया और मकान की चारदीवारी से बाहर गली मे उचककर देखा, बेपनाह भीड इकट्ठा थी। राजेश का परिवार काफी लम्बे वक्त से इस नगर में था, इसके अलावा उसके पिता बैंक मे मैनेजर थे, इसलिए छोटे-बड़े सभी उद्योगपति शादी में आये हुए थे। दरवाजे से लेकर गली के नुक्कड़ तक गैस के हंडे और आदमियों के सिर-ही-सिर दिखायी पड़ रहे थे। गली के बाहर मुख्य सडक पर कारों की रेल-पेल मची थी।

वरमाला की व्यवस्था मुख्य द्वार पर नही की गयी थी, बल्कि लॉन में एक तरफ भव्य मंच बनाया गया था। बाराती आये तो वे भी मच के आगे पड़े काऊच और सोफों पर बैठते चले गये। कार्यक्रम शुरू होने से पहले तक बैंड की धुनें और लाउड-स्पीकर मे फिल्मी गाने जितने जोर-शोर से बज सकते थे, बजकर वातावरण गुंजाते रहे।

उस सारी भीड-भाड मे मैं एक तरफ हटकर एक तटस्थ दर्शक बना सब कुछ देखता रहा। मेरे हक मे सबसे अच्छी बात यही थी कि वहां मौजूद प्रत्येक व्यक्ति अपने आप मे इतना अधिक व्यस्त था, कि किसी को मेरी ओर आंखें उठाने की भी फुर्सत नही थी।

वरमाला के लिए मीनू बहुत-सी लडकियों मे घिरी हुई मच पर आयी। वह सिर झुकाये हुए, लाज की गठरी बनी हुई थी। उसके साथ, मैंने देखा, सीमा भी थी! मीनू को इतने लाज-सकोच में देखकर मेरे भीतर एक क्रूर भाव जाग उठा, मानो विद्रूप का समुद्र ही मेरे अन्तर में लहराने लगा हो, कैसे-कैसे नाटक होते हैं इस दुनिया में। अभी तक यह लडकी मुझ पर जान छिड़कती थी, कितनी दिलेरी से मुझ पर अपना अधिकार जतलाती थी और आज? अगर मैं एकाएक कहीं इस समय सामने पड जाऊं तो इसकी हालत 'कोबरा' पर पांव पडने जैसी हो जाएगी।

लेकिन तभी किसी ने मेरे भीतर मे चाबुक फटकारा, "सिर्फ लडकियां? आदमी नहीं रखता तरह-तरह के चेहरे अपने पास? सीमा के साथ रहने

से क्या तुम्हारी धड़कन तेज नहीं हो जाती ? क्या अभी भी, बेखबरी में ही सही, तुम्हारी आखें सीमा पर नहीं लगी हुई हैं ?"

'जयमाला' हुई, फोटो हुए, सेहरा गाया गया । सेहरे की मुद्रित प्रतिया बारातियो और मेहमानो को बाटी गयी तो कोई एक कागज मेरे हाथ मे भी थमा गया । लेकिन इस सारे वक्त मैं अपने-आप से ही लड़ता-जूझता रहा । बाहर की दुनिया की हलचल को अपनी आखों से लगातार देखने के बावजूद मैं कोई संगति अपने मस्तिष्क मे नहीं बैठा पाया । एक अजीब-सी व्यर्थता ने मुझे सब तरफ से घेर लिया ।

थोडी देर बाद मैंने उपस्थित जन-समुदाय पर ध्यान दिया तो पाया कि लोग 'डिनर कैम्पस' मे दाखिल हो गये थे । मैंने सोचा, बस, यहां से निकल भागने का यही सबसे ज्यादा उपयुक्त क्षण है ! लेकिन अगले क्षण ही मुझे अपनी मूर्खता पर हसी आने लगी, मैं अपने साथ सीमा को लेकर आया था और उसे मीनू के सुपुर्द कर आया था । उसे बिना साथ लिये लौटने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । मैं सोचने लगा कि अब मैं क्या करू ?

मैं वहा से चुपचाप हटकर मकान के भीतर सहन मे चला गया । विवाह-संस्कार के लिए बहुत खूबसूरत मण्डप बनाया गया था । मण्डप खासा बड़ा, लम्बा-चौड़ा बनाया गया था, जिसमे कि डेढ़-दो सौ स्त्री-पुरुषों को वहा बैठने मे कोई असुविधा न हो । औरतें ही वहा ज्यादा नजर आ रही थी, जो ज्यादातर उम्रवाली महिलाएं थी, शायद वे भीतर की व्यवस्था मे लगी थी । लडकिया और मीनू अभी वरमाला के मण्डप से लौटकर अन्दर नहीं पहुची थी ।

पाच-सात मिनट बाद लड़कियो की 'हा-हा, हू-हू' के बीच छुई-मुई बनी मीनू, बाहर के वरमाला समारोह को सम्पन्न करके अपने कमरे की ओर लौटती दिखायी पडी । मैं भीतर-ही-भीतर एक अजब उच्चाटन अनुभव कर रहा था । चाहता था, किसी तरह कोई एकान्त क्षण ऐसा मिल जाए कि मैं मीनू को अलविदा कहकर वहा से निकल भागू । मन मे एक विस्फोटक ज्वालामुखी भडक रहा था, जिसका लावा स्मृतियों के दश के रूप मे मुझे कहीं भी टिकने नहीं दे रहा था ।

बहुत देर तक मैं मण्डप के एक काष्ठ स्तम्भ को पकड़े अवसन्न-सा खड़ा रहा। धीरे-धीरे लोग बाहर से लौटकर अन्दर आने लगे। हंसी-कहकहों की गूंज मेरे कानों मे झनझनाहट बनकर उतरती रही। बाहर क्या हो रहा होगा ? इस समय बारातियों को 'ड्रिक्स' सर्व किये जा रहे होंगे, निश्चय ही चाण्डाली किस्म का माहौल होगा। मैंने अपने सम्बन्ध में एक अन्य पुरुष की तरह सोचा और अपने दब्बूपन को लानत भेजते हुए पूरी तरह अस्वीकृत कर दिया।

मैंने देखा, दोनों तरफ के पंडित लोग विवाह की रस्म अदा करने के लिए वेदी के निकट पहुच गये और अपनी आरम्भिक तैयारियों में व्यस्त हो गये। मुझे लगा, अब तो शायद मीनू से 'अन्तिम विदा' कहने का अवसर भी हाथ मे नहीं रह जाएगा ! अधिक-से-अधिक दस-पन्द्रह मिनट में मीनू वेदी पर आकर बैठ जाएगी, और तीन-चार घंटे तक वहा तरह-तरह के नाटक रचाने पड़ेंगे। उतने समय तक ठहरना मेरे लिए और भी जानलेवा बन जाएगा।

मैंने वह जगह तत्काल छोड़ दी और भीड़ के बीच होता हुआ वहां जाने लगा, जहा मीनू बैठी थी। बीच मे ही मीनू की माताजी मिल गयी और बोली, "अरे अखिल, कल कहां चले गये थे ? राजेश तो तेरे लिए दिन भर परेशान रहा, क्या आज भी अभी आ रहा है ?"

"नहीं माताजी, मैं तो शाम से ही इधर हू !"

"अच्छा ?" कहकर उन्होंने सहज भाव से कहा, "मीनू को ढूढ़ रहा है न ? चल, मैं ले चलती हूं, उधर लड़कियों से घिरी बैठी है।" वे मुझे मीनू के सामने ले जाकर बोली, "ले देख, यह है तेरे भाइयों की हालत, अब चेहरा दिखा है इस भले मानस का !" फिर उन्होंने मुझसे कहा, "चल, इसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दे !"

उनके यह कहते ही एक विचित्र-सा उत्ताप भरा बगूला मेरे भीतर उठ खड़ा हुआ, मगर मैंने उसे तत्काल इस तरह दबा दिया, जैसे तेजी से चलती हुई मशीन को स्विच ऑफ करके एक पल में निष्क्रिय कर दिया जाता है। मैंने तुरन्त चेहरा बदलकर मीनू के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "मौज करो, सदा सुहागन रहो, पानी की बजाय दूध से स्नान करो

और...!" मैं अपनी बात पूरी तरह नहीं कह सका, बीच में ही मेरी आंखें मीनू के चेहरे को देखकर स्तब्ध रह गयीं। उसके चेहरे पर सहजता नाम को भी नहीं थी। हां, बाकी लड़कियां जरूर खिलखिला रही थीं। सीमा ने एक बार मेरा चेहरा देखा और हठात् उसकी आंखें मीनू की ओर उठ गयीं। फिर वह लड़कियों की हंसी में शामिल नहीं हो पायी, बल्कि अनजाने ही उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

तभी न जाने क्या हुआ कि मेरे पांव क्षण भर में ही वहां से मुझे बाहर की ओर ठेलकर ले गये। मैं न मण्डप की ओर गया और न बाहर राजेश के पास गया, सबकी आंखों से बचते हुए ऊपर छत पर चला गया। ऊपर बहुत से फालतू सामानों का ढेर लगा था। उसी के बीच से होते हुए मैं छत के सीमान्त तक जा पहुंचा। वहां एक सोफा उपेक्षित-सा पड़ा था और रोशनी नाममात्र को ही थी। मैं कुहनियों के बल उस सोफे पर जाकर पड़ रहा। मैंने लेटकर ऊपर आकाश की ओर देखा, निरभ्र आकाश में सफेद फूलों-जैसे असख्य तारे फैले हुए थे और हल्की-हल्की ओस पडने लगी थी। लेकिन उस मानसिक उत्ताप मे मुझे माहौल की ठंड दुखदायी नहीं लगी।

एक अवश आक्रोश मे जकड़ा मैं, सोफे पर पड़ा न जाने क्या सोचता रहा। नीचे चारों तरफ इतना शोर था कि यहां छत तक उसकी गूंज सुनायी पड़ रही थी, लाउडस्पीकर से फिल्मी गानों की मादक धुनें हवा पर तैरते हुए दूर-दूर तक फैल रही थीं। लेकिन मेरे चारों ओर तिरस्कृत; फालतू सामान का ढूह लगा पड़ा था और उसी के बीच एक फालतू जिंस की तरह मैं भी था। पता नहीं कब मुझे गहरी नींद ने दबोच लिया। मैं हड़बड़ाकर जगा तो अपनी घड़ी की सुइयों पर मेरी आंखें गयीं। नीम अंधेरे मे 'रेडियम की सुइयां चमक रहीं थीं, सवा दो का वक्त हो चुका था।

मैं एकदम सोफे से उठकर खड़ा हो गया। मुझे लगा कि अब तक मुझे लौट जाना चाहिए था। सीमा साथ आयी है, मुझे कहीं भी न देखकर व्यग्र हो उठी होगी! उधर डॉक्टर राव भी शायद चिन्तित होंगे, उन्होंने ग्यारह-बारह तक लौटने की ताकीद की थी।

मैं आंखें मलते हुए उस मलबे के बीच से बाहर निकला और जीने की सीढ़ियां उतरकर नीचे सहन में पहुंच गया। सप्तपदी कब की समाप्त हो

चुकी थी। वर-वधू भी उठकर भीतर कहीं चले गये थे। मैं कई कमरों के चक्कर काटते हुए वहा जा पहुंचा, जहा केसरी और मीनू बहुत-सी लड़कियों-औरतों से घिरे बैठे थे। लड़कियां केसरी को बना रहीं थीं और वह मुक्त भाव से हंस रहा था। मैंने केसरी के करीब पहुंचकर उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "मिस्टर केसरी, हैव माई हार्टिएस्ट काग्रेचुलेशस !"

केसरी ने मुस्कराकर मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "मगर भाई-जान, ये क्या ? आपने आखिरी सीन तक भी अपनी 'अपियरेन्स' नहीं दी। हमसे ऐसी भी क्या नाराजगी हो गयी कि जब हमारा दूल्हेवाला सारा साजो-सामान झटक लिया गया, तब आप आ रहे हैं ?"

केसरी के इस सवाद पर सारी लडकिया खिलखिला कर हस पड़ी। लेकिन मीनू ने अपना सिर एक बार भी ऊपर नही उठाया, वह नीचे सिर झुकाये निर्विकार-सी बैठी रही।

सीमा पीछे की तरफ लड़कियों के बीच मे बैठी थी और शायद मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने केसरी की बात को हसकर उडा दिया और सीमा की ओर मुड़कर आंखों से उसे चलने का सकेत दिया। अभी कोई रस्म बाकी थी, जिसका सिलसिला शुरू होने जा रहा था।

मैंने वहां से चले जाने का किसी को कोई स्पष्ट सकेत नहीं दिया और नामालूम ढग से वहा से हटने लगा। शायद मीनू मेरा इरादा भाप गयी। उसने एक क्षण के लिए आखें उठायी और मेरी आंखों से मिलते ही उसकी पलकें झुक गयी।

उस अन्तिम दृष्टि से मैं भरसक बचना चाहता था, मगर भीतर के कौतूहल ने आखिर बचने ही नहीं दिया। मैं हठपूर्वक अपने पैरों को ठेलते हुए बाहर निकल गया। मेरे पीछे ही सीमा भी निकलकर बाहर आ गयी।

सहन में उस समय कोई नही था। सीमा ने बहुत गौर से मेरा चेहरा देखा और चुप रह गयी। मैंने अपना मनोभाव दबाकर जल्दी-जल्दी कहा, "अब लगभग तीन बजे हैं, रिक्शा शायद सड़क पर मिल हो जाए। न मिला तो पैदल ही निकल चलेंगे ! अब कोई दूसरा जरिया भी नहीं है।"

इस पर भी उसने कुछ नही कहा तो मुझे उसका मौन भारी लगने लगा। मुझे लगा, यह चुप्पी अर्थहीन नहीं है। सीमा शायद कुछ बहुत

गहराई तक महसूस कर रही है। उसकी आंखों मे एक सचेत दृष्टि थी, जिसे मैं नजरन्दाज नही कर सकता था। मैने फिर जल्दी-जल्दी बोलना शुरू कर दिया, "अगर हम लोग कायदे से घर जाना चाहें तो कोई गाड़ी से ही छोड़कर आएगा, लेकिन यह कौन होगा और कब छोड़कर आएगा, इसका कोई ठिकाना नही है।" यह कहते-कहते मैं बाहर गली में निकल आया। मेरे पीछे ही सीमा भी बाहर आ गयी। गली में कोई वाहन नहीं खड़ा था, हां, कुछ लोग कुर्सियां डाले जरूर बैठे थे। सम्भवत: ये वे लोग थे जो इस शादी मे बतौर नौकर-चाकर हाजिर थे और जिन्हें इस समय कोई खास काम करने के लिए नही रह गया था।

गली से चलते हुए जब हम दोनों मुख्य सड़क पर पहुंचे तो मैंने देखा, शुगर मिल के मैनेजर कयूरिया साहब अपनी गाड़ी को बैक करके बीसेक गाड़ियों की भीड़ से बाहर निकाल रहे थे। गो, मेरा उनसे कोई प्रत्यक्ष परिचय नही था, लेकिन मैंने संकोच छोड़कर कहा, "हम दोनों को डॉक्टर विक्रमराव के यहां पहुंचना था। वक्त ज्यादा हो गया है, आप अगर उधर ही जा रहे हैं तो मेहरबानी करें, हमे राव साहब के रेजीडेन्स पर 'ड्रॉप' कर दें।"

मुझे और सीमा को देखकर कयूरिया साहब सौजन्य से मुस्कराकर बोले, "व्हाई नॉट सर, आई'ल ड्रॉप यू देयर, बाई ऑल मीन्स !"

जब वे अपनी गाड़ी निकालकर सड़क पर आ गये तो उन्होंने गाड़ी का द्वार हम लोगों के लिए खोल दिया। गाड़ी में बैठकर मैंने सीमा से कहा, "अब हमें पहुंचने मे तीन-चार मिनट से ज्यादा नही लगेंगे। हो सकता है, डॉक्टर साहब ने ग्यारह-बारह तक हमारा इन्तजार भी किया हो, अब तो सब लोग सो गये होंगे !"

मुझे लौटते समय यह सोचकर बहुत राहत मिल रही थी कि राजेश के घर से निकलते समय कोई ऐसा आदमी नहीं मिला, जो हमको अटका लेता। रात के पिछले पहर में ठंड बढ गयी थी। सीमा और मैं दोनों ही मौसम के हिसाब मे अपर्याप्त कपड़े पहने हुए थे। हम दोनों पिछली सीट पर एक-दूसरे से सटे बैठे रहे, जिससे कि हम कांपते नजर न आएं।

कयूरिया साहब ने पांच-सात मिनट में ही हम दोनों को डॉक्टर राव

की कोठी से थोड़ी दूर हटकर सड़क पर छोड़ दिया। बाहर के गेट पर ताला बन्द नही था। मैं और सीमा भीतर घुसे तो चौकीदार बराण्डे से उठकर आ गया और गेट का ताला बन्द करके बोला, "डॉक्टर साब ने बोल दिया था के आप लोगन को रात मे ही लौटना है, इसीलिए मैंने ताला नही लगाया था।"

मैंने उसे धन्यवाद दिया और सीमा से बोला, "अच्छा, अब मैं चलता हूं।"

सीमा को बोलने का अवसर दिये बिना ही चौकीदार बोला, "भैया-जी, आप कू अब कहीं नहीं जाना है, डॉक्टर साब ने बोल दिया था, बरामदेवाले कमरे मे आपका बिस्तर बिछा है, बिटिया भीतर अपने कमरे में चली जायेंगी, आप निफराम आराम करो, अब रात ही कितनी बची है!"

सीमा मकान के भीतरी भाग में चली गयी तो मैं बराण्डे से जुड़े कमरे मे जाकर लेट गया। मुझे रात के उस अन्तिम प्रहर में जरा भी नींद नही आयी। दिमाग भी एकदम खाली-सा हो गया था।

सुबह नाश्ते पर डॉक्टर राव से मुलाकात हुई। उन्होने मीनू की शादी के बारे मे सरसरी तौर से एक-दो बातों की जानकारी ली और फिर यों ही पूछ बैठे, "कोर्ट तो जाओगे आज?" मैंने हंसते हुए कहा, "हां, बैठे-ठाले वहीं चला जाऊंगा!"

मेरी बात पर डॉक्टर भी मुस्करा पड़े और मेज से अखबार उठाकर देखने लगे। नाश्ता खत्म होने के बाद मैं उठकर चला तो सीमा भी बाहर निकल आयी और लॉन पर जाकर ठहर गयी। मैं भी उसे देखकर ठहर गया। मैंने देखा, उसकी आंखों मे एक अर्थपूर्ण जिज्ञासा है। मुझे लगा, वह मेरे साथ यों ही घर से बाहर नही निकली, उसके मन मे कोई बात जरूर है। मैंने पूछा, "तुम यहां सुबह-सुबह क्यों आकर खड़ी हो गयी, क्या कोई खास बात है?"

"नही, कोई खास बात नही है, और अगर होगी भी तो क्या हमें बतला देंगे आप?"

"मेरी जिन्दगी मे ऐसी कोई चीज शायद नही है, जिसे कभी तुमसे छिपाने की जरूरत पड़े!"

सीमा ने बगैर भूमिका बांधे पूछा, "आपने मीनूजी की शादी में ले जाते हुए मुझे कुछ भी नहीं बतलाया। क्या वाकई उनके साथ आपका कोई रिश्ता नहीं था ? मैं साथ न जाती तो मुझे यह बात कभी भी मालूम न होती, अच्छा हुआ, मैंने उन्हें अपनी आखों से देख लिया। आपने उन्हें इतना दुखी क्यों किया ? एक पल भी उनके पास नहीं ठहरे ! मैं लगातार उनकी आखें देखती रही, उनकी निगाहों मे बराबर आपकी तलाश थी !"

"बहुत लोगों के साथ बहुत दिनों के सम्बन्ध होते हैं सीमा, लेकिन उससे क्या होता है ? जो रिश्ते किसी मंजिल की तरफ नहीं ले जाते, उन्हें अपने मन से माने रखने में क्या तुक है !"

"आप ये बेकार की बातें रहने दीजिये," सीमा ने गम्भीर होकर कहा। मैं उसकी आखों मे एक बेचैनी उभरते हुए देख रहा था। वह एक लम्बी सांस खीचकर बोली, "आदमी होकर आप शायद नहीं जानते कि औरत का मन एक ऐसा आईना होता है, जिस पर कई शक्लें नही उभरती। एक अक्स, जो उस आईने पर पहली बार पड़ता है, वह कभी ओझल नहीं हो पाता। आप नही जानते तो अच्छा ही है, कि उस एक परछाई को मन के दर्पण से निकालने में मीनू की सारी उम्र चली जायेगी, मगर वह फिर भी सफल नही होगी !"

सीमा के चेहरे की व्याकुलता मुझे कहीं बहुत गहरे में प्रभावित कर गयी। मैं नही जानता था कि सीमा मे जज्बाती गहराई इस कदर व्याप्त है। मैंने उसकी स्थिर आंखों में झांकते हुए कहा, "हो सकता है, तुम्हारी बात ही सच हो ! लेकिन मैंने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं उठा रखी थी, मैंने भी मीनू के लिए कम दुख नहीं सहा, सीमा ! बस, अब तो यही सच है कि समय ने मेरा कोई साथ नहीं दिया, और अब मुझे उसे लेकर अफसोस भी क्या रह गया है !"

"मन से ज्यादा रूप बदलनेवाली चीज इस दुनिया मे और कोई नहीं है ! यह अपने आपको कई तरह से भरमाता है। लेकिन आदमी और औरत मे यही फर्क है, औरत खुद को कैसे भी नहीं बहला पाती ! आपने आगे बढ़कर उसका हाथ क्यों नही पकड़ लिया ?"

सीमा के इस सीधे और आक्रामक सवाल का मेरे पास कोई साफ उत्तर नहीं था। मैंने स्वयं को टटोलते हुए कहा, "पता नहीं क्यों, औरों के द्वारा बनायी गयी अपनी तस्वीर मैं अपने हाथों से नहीं तोड़ पाया।'

"क्या दूसरों की नजरों में जीना भी कोई जीना है? आगे किसी लड़की के साथ यह मत करना, यह बहुत बड़ा पाप है!" सीमा ने बहुत स्नेहिल शब्दों से मुझे समझाते हुए कहा।

"अब कौन आयेगा इस वीरान-बजर जिन्दगी में?"

मेरे शब्दों पर सीमा हंस पड़ी और भौंहें चढाकर बोली, "बहुत जल्दी थककर बैठ ाये वकील साहब! क्या हारे हुए मुकदमे की कही अपील नही होती?"

जिस ढंग से उसने 'वकील साहब' कहा उसपर मुझे भी हंसी आ गयी। मैंने उससे कहा, "क्या इस हारे हुए मुकदमे की अपील कहीं दायर हो सकती है? तुम्हारी नजर मे है कोई ऐसी जगह?"

"मैं क्या जानूं, मुकदमों की बातें तो आप ही जानते हैं, कोशिश तो करनी ही चाहिए!"

"अच्छा! लेकिन मुझे भरोसा देकर कही पीछे न लौट जाना!" मैं फिर वहा नही ठहरा। गेट से निकलते हुए मैंने देखा, सीमा अभी उसी स्थान पर खड़ी थी।

१६

सीमा को लेकर मैं कई दिन तक सोचता रहा। मीनू को उसने सिर्फ कुछ घंटों तक देखा था, लेकिन उसके लिए सीमा के मन में कितनी गहरी सहानुभूति जाग उठी थी! मुझे उसका यह भाव बहुत भला लगा। मीनू के लिए उसके मन मे हल्की-सी भी ईर्ष्या की भावना नही थी। यही नही, उसने मीनू के प्रति मुझे ही अपराधी ठहराया था।

तीन-चार दिन तक मुझे डॉक्टर राय के यहां जाने का अवसर नहीं

मिल पाया। एक शाम जब मैं कई दिनों के बाद वहां पहुंचा तो मालूम हुआ कि राव साहब डिस्पेन्सरी गये थे। मुझे आशा थी कि अब तक डॉक्टर साहब की पत्नी लौट आयी होंगी, पर वहां जाकर ही यह पता चला कि वे अभी तक नहीं लौटी हैं।

सीमा और चन्नी दोनों दालान में चारपाई पर बैठी सब्जियां काट रही थीं। सीमा ने मुझे देखा तो वह चारपाई से उठकर मेरे पास आयी और बेचैनी प्रकट करते हुए बोली, "इतने दिनों कहां रहे? मेरी पढ़ाई का क्या होगा? मेरे पास तो किताबें भी नहीं है, जो थोड़ी-बहुत हैं भी, मकान में बन्द पड़ी हैं।"

सीमा के लगातार बोलते चले जाने से मैं हंस पड़ा और दोनों हाथों को उसकी तरफ उठाकर बोला, "भला इतने सारे सवालों का जवाब भी कोई एक साथ दे सकता है?"

सीमा भी हंस पड़ी। मैं कुर्सी पर बैठ गया तो बोली, "इम्तिहान का टाइम तो अब हर दिन पास ही आता जा रहा है, मेरी तैयारी तो बिल्कुल भी नहीं है!"

"तैयारी भी हो जायेगी, पहले कुछ चाय-वाय पिलाकर हमारी आव-भगत तो करो! सेवा से ही मेवा मिलता है सीमा रानी!"

"यह रानी-रानी क्या है, सीधे से सीमा नहीं कह सकते?" उसने आंखें तरेरकर मेरी ओर देखा और साथ ही चन्नी से दो-तीन प्याले चाय बनाने को कहा। जब चन्नी रसोई की तरफ चली गयी तो वह मुझसे धीमे स्वर में बोली, "डॉक्टर साहब बहुत अच्छे हैं, बिल्कुल बड़े भाई-जैसा प्यार करते हैं हम दोनों को, पर यहां कब तक रहा जा सकता है? अगर भाभी-जी ने लौटने पर हम दोनों को पसन्द न किया तो क्या होगा?"

मुझे सीमा की यह चिन्ता गलत नहीं लगी। यह ठीक है कि डॉक्टर राव ने मानवीयता के नाते इतना सब कुछ किया, लेकिन एक जवान और सुन्दर लड़की को क्या डॉक्टर राव की पत्नी वैसी ही सहजता से ग्रहण कर सकेंगी? इसके अलावा, उनकी अनुपस्थिति में ये दोनों बहनें घर में रह रही हैं, इसका कोई गलत अर्थ ही लगा बैठी तो क्या होगा?

मैं कुछ देर तक सीमा की आशंकाओं पर विचार करता रहा और

बोला, "अखबारों में तुम दोनों बहनों की तरफ से तुम्हारे भैया के लिए अपील भेजी जा चुकी है। अगले इतवार को वह छप जायेगी। देखते हैं, उसका क्या नतीजा निकलता है! हो सकता है। तुम्हारे भाई साहब उसे कहीं पढ़ लें तो लौट ही आयें!"

"क्या मालूम, उसे कब पता चलेगा! और अगर वह फिर भी न आया तो?" सीमा वास्तव मे चिन्तित हो उठी।

"लेकिन इस समस्या को अभी तुम इतना महत्त्व ही क्यों देती हो? जब कुछ बात उठेगी तो देखेंगे! आखिर डॉक्टर राव इस मामले में मुझसे कोई बात तो करेंगे ही। यो उनके लिए यह कोई समस्या भी नहीं है ऐसी! इतनी बडी कोठी है, इतने नौकर-चाकर हैं, दो मिया-बीवी की कुल जमा गृहस्थी है···तुम इस तरफ सोचना ही छोड़ दो!" मैंने सीमा को दिलासा दी।

"हम दोनों अपनेवाले घर में ही न चली जाएं? अब तो कई दिन हो भी गये, वहां कुछ सामान भी पड़ा है।"

सीमा के इस प्रस्ताव से मैं चकरा गया। उस भूतघर में जाने के विषय में तो मैं सोच भी नहीं सकता था। मैंने इंकार मे सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं-नहीं, उधर जाने की बात तो सोचो ही मत! क्या तुम दोनों वहां अकेली रह सकती हो? मैं डॉक्टर साहब से कुछ पूछकर ही बताऊंगा!"

"अच्छा, तो फिर, ठीक है" कहकर सीमा उठी और किचन की दिशा में चली गयी। जब वह लौटकर आयी तो उसके हाथों मे चाय के प्याले थे।

चाय पीते समय सीमा एकदम सहज हो आयी और उसके चेहरे पर निश्चिन्तता दिखाई पड़ने लगी। चाय खत्म करके मैं जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया तो सीमा बोली, "ऐसी भी क्या जल्दी है, कहीं जाना है क्या? डॉक्टर साहब हर रोज दुकान से लौटते ही आपके लिए पूछते हैं। खाना बन रहा है, आप सबसे पहले खाकर चले जाना। मुझे डॉक्टर साहब ने बतलाया था कि आप नौकर से खाना बनवाकर खाते हैं।"

मैंने उसकी बात सुनकर ठहाका लगाया, "अरे सीमा, मेरे खाने को

लेकर इतनी फिक्र न करो! नौकर भी बनाकर दे देता है, यही क्या कम है। हमारे लिए कोई भोजन परोसे बैठा मिले, अपना ऐसा भाग्य नहीं है। सकल पदारथ तो बड़े भाग्य से ही मिलते हैं!"

सीमा ने बनावटी क्रोध से कहा, "देखिये फिर वही सिलसिला चालू हो गया! जरा-सी बात कही जाए आपसे, और आप बस बेवकूफ बनाने लगते हैं।...मेरा कहा आप मान ही जायें, यह दावा मैं कर भी कैसे सकती हूं?"

"तुम दावा कर सकती हो और जरूर कर सकती हो, न्यायालय हर खासो-आम के लिए खुले हुए हैं।"

जब मैं थोड़ी देर बाद वहां से लौटने की सोच रहा था तो डॉक्टर राव की गाड़ी बाहर के गेट पर आकर ठहर गयी। एक-डेढ़ मिनट में डॉक्टर साहब अन्दर चले आये। मैंने देखा, उनके चेहरे की स्वाभाविक मुस्कराहट गायब थी और वे गम्भीर दिखाई पड़ रहे थे। मैं सोच नहीं पाया कि ऐसी क्या बात हो सकती है कि राव साहब खिन्न नजर आ रहे हैं! मैंने पूछा, "क्या बात है भाई जान, बहुत गुमसुम लग रहे हैं!"

"लगता है, हम सब लोगों पर एक साथ ही सारे बुरे ग्रह नाजिल हो रहे हैं!"

मैं उनकी बात सुनकर हड़बड़ा उठा। डॉक्टर राव सामान्य स्थितियों में इतनी गम्भीर मुद्रा धारण नहीं कर सकते। मैंने संक्षेप में पूछा, "कोई खास घटना हो गयी क्या?"

मुझे अभी 'क्लीनिक' में फोन मिला है कि साले साहब तुम्हारी भाभी को अपनी गाड़ी से छोड़ने आ रहे थे, रास्ते में हाथरस के पास 'एक्सीडेन्ट' हो गया। उन लोगों को हाथरस के सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया गया है। हालांकि हॉस्पिटल के सुपरिन्टेन्डेन्ट से मेरी अच्छी मुलाकात है, मगर सही-सही हालात क्या हैं, यह तो जाकर ही देखा जा सकता है।"

इसी दौरान सीमा डॉक्टर राव के लिए चाय बनाकर ले आयी। उन्होंने खड़े-खड़े ही चाय गुटकी और बोले, "मुझे अभी फौरन जाना पड़ेगा। तीन-चार घंटे से पहले पहुंचना मुमकिन नहीं हो पाएगा!"

"आप कार से ही जाएंगे न?" मैंने पूछा।

"मेरा खयाल है, गाड़ी लेकर जाना ही मुनासिब होगा। उन लोगों को साथ ला सकने की हालत हुई तो अपने साथ ही लेता आऊंगा।"

मैंने राव साहब के सामने प्रस्ताव रखा, "मैं भी साथ चलू तो क्या कोई हर्ज होगा ?"

"हर्ज तो कुछ नही होगा, बल्कि मुझे 'करेज' ही मिलेगी। लेकिन यहा सीमा वगैरह एकदम अकेली रह जायेंगी।"

मैंने फिर डॉक्टर राव के साथ जाने का आग्रह नही दिखाया। कहा, "जैसी भी परिस्थिति हो, वहा पहुचते ही फोन से सूचित जरूर कर दें !"

डॉक्टर ने 'श्योर-श्योर' कहते हुए चाय का खाली प्याला झुककर जमीन पर रख दिया और कमरे में जाकर बाहर जाने की तैयारी करने लगे।

डॉक्टर राव के चले जाने के बहुत देर बाद तक मैं वही रहा और घबरायी हुई सीमा को सान्त्वना देकर बहलाता रहा। डॉक्टर साहब के जाने के बाद वह सहसा बिलख पडी और स्वय को अपराधी अनुभव करते हुए उसने कहा था, "डॉक्टर साहब को चोट हमारी वजह से ही लगी थी। हम लोग इधर आयी तो भाभी का भी एक्सीडेन्ट हो गया।"

"क्या फिजूल का वहम करती हो, तुमसे इस सबका क्या मतलब ? इस दुनिया में ऐसी घटनाएं किसी के करने से नही होती और न रोकने से रुक पाती है। दुर्घटनाओं पर साधारण नियम लागू नहीं होते, उनका अपना तर्क ही अलग होता है।"

लगभग रात के साढे बारह बजे फोन की घंटी टुनटुनाई तो मैंने लपककर रिसीवर उठाया। मेरे हाथ बहुत नियत्रण के बावजूद कांपने लगे थे। डॉक्टर राव की सधत आवाज सुनते ही मैंने कहा, "हलो, मैं अखिल हू, डॉक्टर दादा !"

"अच्छा ! अखिल, थिंग्स आर कन्ट्रोल्ड। दोनों भाई-बहनों को कई जगह चोटें आयी हैं, मगर गनीमत यही है कि कोई फ्रैक्चर नही है। टाके जरूर लगे हैं, जिसकी वजह से तीन-चार दिन अस्पताल में ही रहना पड़ेगा। इलाज ठीक चल रहा है। ये लोग जैसे ही, 'मूव' करने की हालत में होंगे, इन्हें मैं ले आऊंगा। मैं अभी यहीं हूं, बीच मे उधर भी आ सकता

हूं। और हां, सीमा को भी वतला देना, घबराने की कोई बात नहीं है !"

मैंने सीमा के हाथ में फोन का चोंगा देकर कहा, "सीमा, डॉक्टर राव का फोन है, तुम भी वातें कर लो !"

सीमा ने घबराहट में रिसीवर थामा और कान से लगा लिया। डॉक्टर राव अभी यही समझ रहे थे कि फोन मेरे हाथ में है, क्योंकि ज्योंही सीमा ने डॉक्टर साहब की बात सुनी तो वह वोली, "नहीं-नहीं, यहीं हैं, फोन मैंने उनके हाथ से ले लिया है। भाभी और उनके भैया का क्या है ?"

डॉक्टर राव से आश्वासन मिल जाने के बाद सीमा के चेहरे पर रंगत लौट आयी और उसने फोन का चोगा मेरे हाथों में दे दिया।

डॉक्टर राव ने एक-दो वातें और कहीं और उसके बाद 'ओ० के०' कहकर उन्होंने फोन रख दिया।

डॉक्टर साहब की ओर से आश्वस्त होकर मैंने गहरी स्वस्ति अनुभव की। सीमा वोली, "अब तो हम दोनों को यहां रहना ही पड़ेगा ! जब तक भाभी नहीं लौट आती तब तक तो और कुछ सोचा ही नहीं जा सकता।"

"ज्यादा उतावली की बात भी क्या है आखिर? डॉक्टर राव में किसी किस्म की बनावट के लिए कतई गुंजाइश नहीं है। वे जितना कहते हैं, उससे अधिक ही करने में विश्वास रखते हैं। उन्हें सरपरस्त पाकर तुम्हें हर तरफ से निश्चिन्त महसूस करना चाहिए।" मैंने सीमा के चेहरे पर व्याप्त चिन्ता को झटकने की गरज से कहा।

"हां, यह तो मैं शुरू से ही देखती चली आ रही हूं !" यह कहकर सीमा उठी और दूसरे कमरे में चन्नी को देखने चली गयी। चन्नी को सोये हुए काफी देर हो गयी थी।

भोजन बनाने वाला महाराज नारायण अभी तक नहीं सोया था। उसे शायद भनक पड़ गयी थी कि डॉक्टर साहब का फोन आया है। उसने उत्सुकता से पूछा, "डॉक्टर साहब पहुंच गये क्या भैया जी ?"

मैंने नारायण को वतलाया कि डॉक्टर राव काफी देर पहले हाथरस पहुंच गए थे, उनका फोन भी आया था।

इतने पर भी उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। उसने पूछा, "मेम

साहब तो ठीक हैं ना ? उनको ज्यादा चोट-फोट तो नही आयी ?" उसके चेहरे पर एक शुभचिन्तक सेवक की चिन्ता साफ झलक रही थी।

मैंने उसे बताया, "चोटें तो लगी हैं पंडितजी, मगर खतरे की कोई ऐसी बात नही है। बस, खैरियत ही हो गयी, नहीं तो कुछ भी हो सकता था, महाराज !"

"भगवान बड़े हैं, सबकी रच्छा करने वाले" यह कहकर नारायण ने दोनों हाथ हवा में ऊंचे उठाकर जोड़ दिए, वह किसी अज्ञात शक्ति के प्रति नत हो आया था। इसके बाद उसने जोर से जमुहाई लेकर पूछा, "क्या बज गया ? अब तो आखिरी पहर चल रहा होगा !"

"हां, बहुत देर हो गयी। रात बहुत जा चुकी है। थोड़ी देर मे मुर्गे बांग देने लगेंगे। आपको नींद आ रही होगी, अब जाकर सो जाओ।"

"अच्छा जी" कहकर नारायण जाने के लिए आगे बढ़ा, मगर फिर फौरन ही मेरी तरफ मुड़कर उसने अपनी चिन्ता व्यक्त की, "अब इतनी रात गए आप भी कहां जाते फिरोगे, थोड़ी-भोत देर डॉक्टर साब के कमरे में ही लोट लो।"

मैं नारायण से कहने ही वाला था कि मैं जा रहा हूं, उसी समय सीमा दूसरे कमरे से लौटकर बोली, "आपको इतने पहर कहीं जाने की जरूरत नही है। डॉक्टर साहब के कमरे मे ही सो लो, वैसे ही रात अब कहां रह गयी है !"

"अभी तो रात एक-तिहाई बाकी है, मैं चला ही जाता हूं। यह रोज-रोज का यहां सो रहना भी तो अच्छा नहीं लगता। अभी उस रोज रात को शादी से लौटकर भी तो यहीं पड़ा रहना पड़ा था।" मैंने सीमा से कहा।

"आप कौन मेरी वजह से रुकते हो यहां। आपके दोस्त का मकान है।" सीमा ने भौहें वक्र करके मेरी ओर देखा।

"तुम्हारी वजह से नही रुकता ? अच्छा तो फिर ठीक है, मैं अपनी वजह से भी क्यों रुकूं ?" यह कहकर मैं बिना इधर-उधर देखे, कमान से छूटे तीर की तरह मकान से बाहर आ गया। मैंने बाहर निकलकर गली में देखा कि कोई आदमी नजर नहीं आ रहा था। हां, सड़क पर तीन-चार

निराश्रित गायें इधर से उधर तक बैठीं आराम कर रही थीं। दूर नुक्कड़ पर आकर मोहल्ले की चौकसी करने वाला चौकीदार दिखाई पड़ा। मुझे देखकर वह खांसा और 'जागते रहो' की आवाज के साथ सड़क पर लाठी पटकते हुए आगे बढ़ गया।

मुझे अन्त तक पैदल चलकर ही अपने निवास तक पहुंचना पड़ा, लेकिन मेरा मन अनजाने मे ही बहुत हल्का हो गया था। सीमा ने ठहरने का अधिक आग्रह नही किया था, तथापि उसका सकोचपूर्ण इसरार मेरे मन में आह्लाद जगाने वाला ही था। मेरे यों झटके से चले आने पर वह शायद कुछ विचलित भी हुई हो, पर उसने सहज संकोच का निर्वाह करते हुए मुझसे फिर आग्रह नहीं किया। कभी-कभी यह भी विचित्र स्थिति होती है कि जो आप मन से चाहते हैं, उसे शब्दों के द्वारा जरा ज्यादा ही जोर से नकारने की कोशिश करते हैं। मेरे इन्कार मे ज्यादा जोर नहीं था, अगर सीमा दो-तीन बार और ठहरने को कहती तो मैं ठहर ही जाता, पर वह भी अपना अनुरोध इतना साधारण क्यों बनने दे?

जब मैं अपने मकान की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था तो कहीं से दो घंटे बजने की आवाज मेरे कानों मे पडी। सहसा मुझे लगा, मेरी रातें कुछ दिनों से बदल-सी गयी हैं, अब यह आराम से सोकर बिताने के लिए नहीं रह गयी हैं।

१७

अगली शाम जब मैं डॉक्टर राय के घर जाने के बारे में सोच रहा था, तभी किसी ने मेरा दरवाजा भड़भड़ाया। मैंने द्वार खोलकर देखा तो मिसरीलाल बी० ए० उर्फ बूचे पेन्टर को सामने खड़ा पाया। यह वही शख्स था जो पहली बार मुझे निरंजनलाल वर्मा के यहां ड्रामा के रिहर्सल के दौरान मिला था, और दूसरी दफा मेरे यहां हरिकिशन को साथ लेकर आया था।

मुझे देखते ही वह खिल उठा और खीसें निपोरकर बोला, "आप शायद मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं ! मेरा नाम…"

मैंने उसे बात पूरी नहीं करने दी, बीच में ही बाधा देकर बोला, "मैं आपका नाम और काम बहुत अच्छी तरह से जानता हूं। आप श्री मिसरी. लाल पेन्टर हैं। रंगमहल टॉकीज के लिए पोस्टर बनाते हैं, और टाइम मिल जाता है तो अगरबत्तियां भी बनाते हैं। इसके अलावा आप बी० ए० पास भी हैं, क्यों, ठीक परिचय मुझे मालूम है या नहीं ?" मैं बगैर सांस लिये सारा कुछ कह गया तो बूचा हड़बड़ा उठा।

मैंने अपना आक्रोशी लहजा बदलकर शालीनता से पूछा, "आज इधर कैसे भूल पड़े ?"

"भूला नहीं हूं, इरादे से ही आपके घर तक आया हूं। आज रात को दस बजे 'न्यू थियेटर' कम्पनी 'उत्तरा-अभिमन्यु' नाटक कर रही है। वर्मा जी ने आपको खास तौर से बुलाने के लिए मुझे भेजा है। वे कह रहे थे कि आपने उनसे वायदा किया था कि आप नाटक देखने के लिए जरूर पहुंचेंगे। मैं बस आपको लेने ही आया हूं।"

मैंने स्वयं को बहुत बुरी तरह से फंसा हुआ अनुभव करके बूचे पेन्टर को टालने की कोशिश की, "अभी तो आप लोग नाटक के कई और 'शो' और करेंगे, फिर कभी देख लूंगा ! दरअसल आज मैं…!" लेकिन बूचे ने मुझे बोलने नहीं दिया, बहुत मीठा आग्रह करके बोला, "आपके लिए ही यह खास शो 'अरेन्ज' किया गया है।"

मैंने उस रात जो रिहर्सल देखा था, मैं उसी से समझ गया था कि ड्रामा तो क्या खाक होगा ! लेकिन बूचे का जबरदस्त अनुरोध टालना सम्भव नहीं दीख पड़ा। मैंने सोचा, अब फंस ही गया तो बचने की कोशिश फिजूल है, थोड़ी देर उछल-कूद का ही मजा लिया जाए !

सारे संकल्प-विकल्पों से उबरकर मैं मिसरीलाल के साथ हो लिया। वह मुझे रंगमहल टॉकीज, जहां बूचा नौकरी करता था, ले गया। मेरा खयाल था कि 'न्यू थियेटर' कम्पनी रंगमहल टॉकीज को किराये पर लेकर ही यह नाटक कर रही होगी।

बड़ा गेट पार करने के बाद टिकट खिड़की से आगे बढ़ने में हम दोनों

को कई मिनट लग गए। मुझे यह सोचकर गहरा आश्चर्य हुआ कि इस कस्बाई मनोवृत्ति के नगर मे टिकट खरीदकर नाटक देखने वाले हजारों की संख्या में मौजूद हैं, लेकिन बाद में जब मुझे सही स्थिति का ज्ञान हुआतो मैं अपने घोर अज्ञान पर हस पड़ा।

भीड़ से जैसे-तैसे निकलकर मैं और बूचा रगमहल टॉकीज के पिछले हिस्से मे पहुच गए। पेशाब घर इस टॉकीज मे वही सन् चालीस के जमाने के थे, जिनसे भीषण दुर्गंध उड़कर सब तरफ फैल रही थी।

पेशाब घर से थोड़ा उधर हटकर एक कोठरी का ताला खोलते हुए बूचा बोला, "वकील साहब, अपना तो यही रैन-बसेरा है! दिन में तो कभी बैठना नसीब में ही नही लिखा, बस, आधी रात के बाद यही पड़ रहते हैं अपन तो!"

बूचे की कोठरी के बाहर लकड़ी के बड़े-बड़े फ्रेम रखे थे, जिन पर टाट मढ़ा हुआ था। कोठरी के अन्दर लकडी की एक सड़ी-गली कुर्सी और पुरानी-सी मेज थी और सब तरफ छोटे-बडे ब्रुश, रगों के डिब्बे तथा पेंटिंग का दीगर सामान बिखरा पडा था। बीड़ी के टोटों की तो इतनी भरमार थी कि शायद महीनो से एक बार भी उन्हें हटाने की नौबत नही आयी थी।

पेन्टर ने अपनी चित्रकारी का जौहर दीवारों पर भी खूब दिखाया था। एक कोने मे चटाई पर रजाई-गद्दे-तकिये-चादर और पहनने के कपडों का ढूह लगा हुआ था। एक कोने मे स्टोव रखा था, जिसका पीतल लोहे से भी कहीं ज्यादा काला हो गया था। शायद उसे खरीदने के बाद पेन्टर को एक दिन भी ऐसा नही मिला था कि उसकी धूल और मैल साफ कर सकता। स्टोव पर तवा भी रखा था, जिस पर एक सूखी रोटी या परांठा पड़ा था। मैंने उस मरियल-सी कुर्सी पर शरण लेने के बाद बूचे पेन्टर से, सूखी रोटी की ओर संकेत करके पूछा, "क्या यह भी आपकी पेन्टिंग मे शामिल कोई अद्भुत कलाकृति है?"

बूचा पहले तो कुछ समझा ही नही, लेकिन जब बात उसकी समझ में आयी तो 'हें-हें' करके बोला, "अजी, क्या हम और क्या हमारी चित्तरकारी, किसी तरह बस कट रही है जिन्दगी! लेकिन एक बात कहता हूं वकील

साहब !" और वह कनकटा पेन्टर एकाएक गम्भीर हो आया। उसकी गम्भीरता पर मुझे हंसी आने लगी, पर मैंने स्वयं पर नियन्त्रण करके संजीदा होने की मुद्रा धारण कर ली। वह मेरी एकाग्रता से प्रभावित होकर बोला, "फक्कड़पन मे जो मौज-मस्ती देखी, वह कही नही है। हमें तो न जीने की खुशी न मरने का गम ! जो दिन कट जाता है, वही अच्छा ! अपना ऐसा भी कोई इस दुनिया में नही है, जिसे लेकर सोच-फिकर करें।"

मुझे चुहल सूझी। मैंने कहा, "सोच-फिकर पैदा करने में क्या देर लगती है, घर बसा लीजिए और फिर देखिए, आपके मन मे यह कलक बाकी नही रहेगी कि आप के पास चिन्ता करने के लिए बेइन्तिहा सामान नहीं है।"

"अपना जहाज तो बदरगाह छोड़कर मंझधार मे जा पहुचा, अब किनारे पर लौटने का कोई काम ही बाकी नही रहा।" कहकर वह फिर 'हूँ-हूँ' करके कर्कश हंसी हसने लगा। फिर उसे मेहमाननवाजी का ख्याल आ गया और इसरार करने लगा, "भाई साहब, एक-एक प्याला चाय तो हो ही जानी चाहिए।"

मैंने उसे टालने की कोशिश की, "अरे छोड़िये साहब ! यहा चाय की तवालत कहा उठाते फिरोगे ? मुझे वक्त-बेवक्त चाय की लत भी नही है।"

लेकिन वह बाज आनेवाला जीव नहीं था, मेरे मना करने का कोई मतलब नहीं निकला। वह चटाई छोड़कर उठ खड़ा हुआ और लपकते हुए बाहर निकल गया।

आठ-दस मिनट बाद बूचे के साथ एक दस बारह बरस का छोकरा आता दिखाई पड़ा, उसके हाथ मे लोहे के पतले तारों का बना स्टैण्ड झूल रहा था, जिसमे चाय से भरे कांच के दो गिलास लटके हुए थे।

बूचे ने लड़के के हाथ मे चाय लेकर एक गिलास मुझे दी और एक गिलास खुद ले लिया। इसके बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर बोला, "जा वे, लौटते बखत हम गिलास कैन्टीन में देते जाएगे !"

चाय सुड़कते हुए उसने फिर वही राग छेड़ दिया, "अपन तो मस्ती से जीते हैं भाई साहब ! हम तो अब यह भी भूल गए कि कभी हमने भी बी०ए० पास किया था। डिग्री भी ससुरी कहां पड़ी होगी, अब तो यह भी पता नहीं !"

बूचे को बातों का दौरा-सा पड़ गया, "कई दफा तो मुझे गेट-कीपर अपनी जगह पर छोड़कर चले जाते हैं। शुरू-शुरू में बड़ी शर्मिन्दगी हुआ करती थी। कोई जाननेवाला आ जाता था तो मुंह छिपाना भारी पड़ जाता था। एक बार तो कुछ जाननेवालों ने आपस में कहा था कि जमाने की ऐसी की तैसी हो गयी। अब तो बी० ए०, एम० ए० तक गेट-कीपर का काम करने लगे। फिर मेरे चेहरे पर कुछ खोजते हुए उसने कहा, "इन हरामखोरों से कोई पूछे कि हम तुमसे क्या बुरे हैं? अरे, अपनी मेहनत की रोटी खाते हैं, तुम लोग दूसरों की कमाई खाकर सड़ रहे हो, तुमसे तो गली का कुत्ता भी बेहतर है, जमीन पर बैठता है तो भी पूछ फटकारकर जमीन की सफाई कर लेता है!"

बूचे की बातों मे सोचने का माद्दा था। वह बहुत बेबाकी से अपनी बातें कह रहा था। शायद उसकी बातें सुननेवाले कम ही लोग थे। मुझे उसका खुलापन अच्छा लगा। बूचे ने अपने झूठे अहं को परिश्रम के पक्ष में समाप्त कर दिया था, जो कम ही लोग कर पाते हैं, और पढ़-लिखकर तो आदमी अक्सर थोथे अहं के समुद्र में ही डुबकियां लगाता रहता है।

उसके पास शायद कहने के लिए बहुत कुछ था। वह चाय बहुत धीरे-धीरे पी रहा था। दो-तीन मिनट तक लगातार बोलने के बाद वह एक घूंट भर लेता था। अपने मन में दबी चिनगारी को वह किसी के सामने लाने को बेचैन नजर आता था, और संयोग से मैं उसकी सारी बातें सुनने के लिए उपस्थित था।

मैंने उससे पूछा, "आप किसी कंपटीशन में क्यों नहीं बैठे?" उसने अपना टूटा कान दिखाकर कहा, "माइ डिफोरमिटी वाज माई एनीमी, नम्बर वन। आई कुड नेवर सी इन द स्काई, ड्यू टु दीज हिंडरेंसिज' (मेरा आंगिक दोष मेरा सबसे बड़ा दुश्मन रहा है, इसकी वजह से मैं किसी ऊंची जगह या पद के बारे में सोच भी नहीं सका)"

मुझे मिसरीलाल पेन्टर का आत्मचरित्र बहुत रोचक लगा। मैंने तय कर लिया कि वह अपने विषय में जो कुछ भी कहना चाहता है, उसे धीरज के साथ चुपचाप सुन लूं। वह अपनी रौ में बोलता चला जा रहा था। मैंने शुरू में ही अच्छी तरह से समझ लिया था कि इस दुनिया में कोई छोटा-

बड़ा नहीं होता, सिर्फ परिस्थितियां ही आदमी के माथे पर छोटे-बड़े और अच्छे-बुरे का बिल्ला लगा देती हैं।"

मैंने उसकी बात को काटना उचित नहीं समझा, क्योंकि इससे उसकी बातों के प्रवाह में बाधा उपस्थित होती। उसने गिलास की तलहटी में पड़ी चाय को आखिरी घूंट में गुटक लिया और फिर बोलने लगा, "बड़े आदमियों की नीचता देखने के बाद तो मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं। रंग महल में काम करने से पहले मैं 'मिनर्वा टॉकीज' में भी कुछ दिनों तक रहा हूं। वह हॉल लाला नत्थीमल गुप्ता ने तभी नया-नया बनवाया था। जिस दिन उस हॉल का उद्घाटन हुआ, शहर के सभी नामी-गिरामी आदमियों को साथ लेकर गुप्ताजी हॉल में आये, दोस्तों और ऑफिसरों को हॉल की खासियतें समझाते रहे।

"उस रोज का पहला शो मुफ्त में चल रहा था। गुप्ताजी ऊपर बालकनी में बैठने की बजाय नीचे फर्स्ट क्लास में ही बैठ गये। तभी न जाने कैसे एक बच्चा अगली क्लास की सीटों को फलांगता हुआ फर्स्ट क्लास में घुस आया। नत्थीमल जी के तन-बदन में आग लग गयी। वह अपनी सीट से भड़ककर उठे और लगे जमाने हाथ तड़ातड़, बच्चे के मुंह पर, साथ-साथ कहते भी जाएं, "हरामजादे तेरे बाप ने बनवाई हैं ये सीटें, जो इन्हें कुचलता आ रहा है?" अब पर्दे पर देवानन्द-कामिनी कौशल तो दो गाना गाकर एक-दूसरे को रिझा रहे थे, और इधर लाला नत्थीमल की बक-झक और मुंह से उड़ता थूक का फव्वारा दर्शकों के ऊपर बरस रहा था।

मिसरीलाल ने चाय के खाली गिलास को हाथ से इधर-उधर करके अपना बयान जारी रखा, "तो वकील साहब, अपन से तो यह देखा नहीं गया! पढ़ते हुए भी जरा हैंकड़ टाइप के थे, और उस पर इत्तिफाक से फर्स्ट क्लास की गेट-कीपरी पर ही तैनात थे। आगे बढ़कर बच्चे को उस कसाई के हाथों से जबरदस्ती छुड़ाया और लड़ पड़े। लाला ने हमारी नौकरी का हवाला देकर कहा, 'अपना काम देखो! दो कौड़ी के आदमी होकर मालिक के मुंह लगते शर्म नहीं आती?'

"मैंने उसी वक्त बगैर किसी लाग-लपेट के कहा, 'ऐसी नौकरी पर पेशाब करता हूं जनाब! आपकी सात पुश्त में भी किसी ने बी०ए० पास

नही किया होगा, खूसड़ लाले ! मुझे शर्म क्यों आए, शर्म आए तेरे जैसी जोंके को, जो हराम की कमाई पर पल-पलकर हाथी हो रहा है !" अपनी बात को चरम परिणति पर पहुंचाते हुए बूचे ने कहा, "और जनाव, मैंने उसके हॉल की दीवार पर, जो दुल्हन की तरह रंगी-पुती थी, फटाक से थूक दिया और फौरन वहा से चला आया !" अपनी बात खत्म करके बूचे ने अपनी कोठरी की दीवार पर भी उसी तरह थूक दिया, जैसे कभी मिनर्वा की दीवार पर थूका होगा। उसका चेहरा आवेश मे तमतमा रहा था। मैंने कहा, "यह चरित्र बल की बात है मिसरीलाल जी ! वर्ना लोग ऐसी बातो को देखकर भी नही देखते।"

"होंगे जी, जो नही देखते होंगे ! आज के दिन भी वह रईस सामने से निकलता है तो मैं उसके ऊपर थूकने की ताकत रखता हू। कभी उसने आख उठाकर नहीं देखा, हजारों वार आमना-सामना हुआ होगा।" और अकस्मात् उसे याद आया कि उसने मुझे नाटक देखने को आमन्त्रित किया है। हड़बोंग में उठते हुए बोला, "अरे भाई साहब, मैं तो भूल ही गया, आइये, नाटक देखने चलिये।"

बूचे की बातों में मुझे नाटक से भी ज्यादा रस आ रहा था, लेकिन जब वही उठकर चल पड़ा तो मुझे भी उठना पड़ा।

बूचा जब 'रंगमहल' के गेट से भी बाहर निकल गया, तब कही मुझे आभास हुआ कि उत्तरा-अभिमन्यु नाटक 'रंगमहल' मे नही हो रहा है, बल्कि उसके मंचन की व्यवस्था कही और की गयी है।

मैं और मिसरीलाल नाटक देखने के लिए रवाना हो गये। नाटक एक खाली मैदान में हो रहा था। आठ-दस बड़े-बड़े तख्त जोड़कर स्टेज तैयार किया गया था, और मंच के चारों तरफ बल्लिया गाड़कर उन पर पर्दे टांगने का काम करीब-करीब पूरा हो चुका था। मच के आगे जमीन पर कई फटी-पुरानी दरिया बिछी हुई थीं, जिन पर शहर भर के बच्चे उछल-कूद मचाकर नाटक शुरू करने की गुहार लगा रहे थे।

मिसरीलाल ने स्टेज के पीछे लगे लम्बे-चौड़े पर्दे की ओर संकेत करके मुझे बतलाया, "यह पर्दा जो आप स्टेज के पीछे टंगा देख रहे हैं, मैंने ही तैयार किया है !"

मैंने उस पर्दे पर निगाह डाली, निहायत फूहड़ ढंग से रंगा हुआ पर्दा था। हां, उस पर्दे की एक विशेषता यह जरूर दिखलाई पड़ रही थी कि मंच पर घूमने-फिरने वाले पात्रों की परछाइयां तेज रोशनी से 'रेफ्लेक्ट' होकर पर्दे पर सिनेमा की चलती-फिरती तस्वीरों का भ्रम पैदा कर रही थी।

हम दोनों 'ग्रीन रूम' में पहुंचे तो मैं निरंजनलाल वर्मा को सहसा पहचान नहीं सका। वह औरत बने, बैठे बीड़ी फूंक रहे थे। चेहरे की दाढ़ी-मूछें सफाचट थी। गालों की उभरी हड्डियां और चेहरे की सिलवटें पाउडर की गहरी पर्तों में दबी-ढंकी थी।

मुझे देखते ही वर्माजी स्टूल से उठकर खड़े हो गये। अब तक वे करीब तीन-चौथाई उत्तरा बन चुके थे। मेरे पास आकर मेरा कन्धा थपथपाकर बोले, "मुझे मिसरीलाल ने पहले ही बता दिया था कि हरकिसन आपके पास पहुंचा था, आपने उसे खूब लताड़ा, बहुत अच्छा किया भैया! ऐसे कंजड़ों की खूब मादरच्वाही होनी चाहिए। साले किसी की बहू-बेटी की कुछ मरजादा ही नहीं समझते। माना बिटिया की उमर कुछ जादे हो गयी है, मगर उस बेचारी को क्या नाबदान में फेंक दिया जाए!"

जिस बात को गुजरे महीनों हो गये थे और जो मेरे मस्तिष्क के किसी भी कोने में मौजूद नहीं थी, उसकी जुगाली वर्माजी न जाने कब से करते चले आ रहे होंगे। मैंने उनकी राय पर कोई टिप्पणी नहीं की।

जब वर्माजी का 'मेक अप' पूरा होता गया तो वे मुझे कोने में ले जाते हुए राजदारी से फुसफुसाये, "अभी तो आप यहीं तशरीफ रखिये। नाटक शुरू होगा तो मैं आपके लिए स्टेज के आगे ही एक बेंच डलवा दूंगा, पूरा ड्रामा देखकर बताना, कैसा लगा?"

मैंने सिर हिलाकर वर्मा को आश्वस्त किया और 'ग्रीन रूम' के दूसरे नजारे देखने लगा, पेटी मास्टर गले में हारमोनियम लटकाये, सिर हिला-हिलाकर एक हाथ से धौंकनी दे रहा था और दायें हाथ की अंगुलियां सप्तकों पर पटक रहा था। उसके बजाने में अजीब मस्ती थी, और वह कोई हृदय-विदारक धुन बजाने में जी-जान से जुटा हुआ था। एक तरफ एक आदमी आधे 'मेक अप' में ही, नाटक में बोले जाने वाले संवाद जोर-जोर

से बोलकर अभ्यास कर रहा था। एक शख्स लाल लंगोट पहने नंग-धड़ंग हालत में भारी-भारी मुद्गर हवा में भांज रहा था, शायद उसे भीम की भूमिका में स्टेज पर पहुंचना था।

'उत्तरा-अभिमन्यु' नाटक देखने के बाद मैं वहां एक मिनट भी नहीं ठहरा। मुझे भय था कि कहीं वर्माजी और बाकी पात्रों से मेरी मुलाकात हो गयी तो वे मेरी गर्दन दबोचकर नाटक की प्रशंसा वसूल कर लेंगे।

निरंजनलाल वर्मा जो पचास की उम्र पार कर चुके थे, उन्हें उत्तरा के रूप में विलाप करते देखना कोई मामूली अनुभव नहीं था। उनकी भूमिका के विषय में कुछ कहना, बर्रों के छत्ते में हाथ डालने-जैसा था!

नाटक के सभी पात्रों के मंच पर उपस्थित होने तथा दर्शकों की प्रशंसा ग्रहण करने से पहले ही मैं भीड़ में गुम हो गया, और चौराहे से रिक्शा पकड़कर घर पहुंच गया।

१८

डॉक्टर राव की पत्नी को ठीक होने में दो हफ्ते से भी ऊपर लग गये। बीच में डॉक्टर कई बार आते-जाते रहे। उन्हें अपने कई महत्त्वपूर्ण मरीजों को देखने आना ही पड़ता था।

जब वे लौटीं, तब भी उनके शरीर पर चोटों के निशान बाकी थे। मैं उन्हें पहली बार ही देख रहा था, पर यह नहीं लग रहा था कि वे मेरे लिए कोई अजनबी महिला हैं। उनके भीतर भी डॉक्टर राव-जैसी ही सहजता और निश्छल स्नेह उमड़ पड़ता था। वह भरे-पूरे बदन की एक गौर वर्ण, प्रभावशाली महिला थी।

डॉक्टर साहब ने उन्हें, मेरे तथा सोमा-चन्नी के बारे में शायद सब कुछ बतला दिया होगा, तभी तो वे मुझे देखते ही बोलीं, "...अखिलेश हैं न?"

"जी हां, मगर आपने कैसे पहचाना?" मैंने अचरज से

दादा उठते-बैठते आपकी इतनी बातें करते हैं कि मैं आपको पहचानने में भूल नहीं कर सकती !"

उनकी हार्दिकता से मेरा मन गहराई तक द्रवित हो उठा। बिना देखे-जाने भी वे कितने सहज स्नेह से मुझे सम्बोधित कर रही थी ! अनायास मेरे मुंह से उनके लिए 'भाभी' सम्बोधन निकल गया। यह शब्द सुनकर वे बहुत प्रसन्न हो उठीं और भावोच्छ्वास से बोली, "डॉक्टर साहब का कोई छोटा भाई नहीं है, चलो, आपके रूप में उन्हें एक छोटा भाई मिल गया।"

मैंने उनकी बात आगे बढ़ाई, "और मुझे एक सुन्दर प्यारी भाभी मिल गयी, मेरा भी कोई छोटा या बड़ा भाई नही है। इस रिश्ते की कमी तो शायद सभी को खलती होगी !"

उनमें चुहल की कमी नही थी। उन्होंने मुझे छेड़ा, "भाभी तभी तक सुन्दर और प्यारी लगती है, जब तक देवर को कोई लुभावनी बहू नहीं मिलती, उसके बाद भाभी की याद किसी को नही रहती।"

मैंने अपने दोनो कन्धे उचकाकर बेचारेपन से कहा, "मेरी ओर से आप निश्चिन्त रह सकती हैं। मुझे कोई गुड़िया आसानी से मिलनेवाली नही है, भाभी !"

अभी वे मुझसे परिहास कर ही रही थी कि सीमा भी आ गयी, और उसने दोनो हाथ जोड़कर मुझे नमस्ते की। मैंने उसके चेहरे पर सहजता देखकर ही समझ लिया कि अब वह इस घर में पूरी तरह से सन्तुष्ट और आश्वस्त है। सीमा ने एक क्षण मेरी ओर देखकर कहा, "अभी तक मेरी पढ़ाई का कुछ भी नहीं हुआ। लगता है, मैं एक्जाम दे ही नहीं पाऊंगी !"

मैं उसे आश्वस्त करने के लिए अभी शब्द ही खोज रहा था कि दीपा भाभी बोल पड़ीं, "इतने पढ़े-लिखे काबिल देवर किस दिन काम आएंगे ? यह वक्त निकालकर तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई जल्दी-जल्दी पूरी कराएंगे।" इसके बाद उन्होंने अपनी स्नेहभरी वाणी मे पूछा, "क्यों, कराओगे न इसकी पढ़ाई ?"

"करानी ही पड़ेगी अब तो ! लेकिन भाभी, मुझे तो पढ़ाई के नाम पर 'ताजीरात हिन्द' की दफाएं ही याद रह गयी हैं, दीवानी, फौजदारी, मार-पीट, अमानत, मुक्का-फजीहत वग़ैरह।"

"ये क्या बोल रहे हो भई," डॉक्टर राव ने कमरे में घुसते हुए मुझसे पूछा। उन्होंने अपना कोट उतारकर कुर्सी की पीठ पर लटका दिया और हम लोगों को देखकर बोले, "आज तो अच्छी-खासी मजलिस जमी हुई है!"

"जी हां, जन्म-जन्मान्तर के बाद देवर-भाभी संवाद हो रहा है, आपको कोई एतराज ?"

डॉक्टर राव कुर्सी खींचकर उस पर बैठते हुए बोले, "हमारे एतराज पर कौन कान देनेवाला है यहां ?"

"हमारे 'ये' बड़े ही देवता आदमी हैं।" दीपा भाभी ने डॉक्टर राव को छेड़ा।

"चलो, देवता के बावजूद इंसानियत हाथ से नहीं जाने दी, इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है !" मैंने भी राव साहब को छेड़ दिया।

डॉक्टर राव मुझे और दीपा भाभी को बातें करते छोड़कर दूसरे कमरे में गये, और थोड़ी देर बाद कपड़े बदलकर लौट आये। मेरी बगल में कुर्सी पर बैठकर उन्होंने इधर-उधर देखा और बोले, "बोलो बच्चू, क्या इरादा है तुम्हारा अब ?"

उनके इस आकस्मिक सवाल को मैं एकाएक पकड़ नहीं पाया। उनके चेहरे की ओर निगाह गयी तो मैंने देखा, वे मुस्करा रहे थे। भाभी भी उसी तरह भेदभरी हंसी हंस रही थीं। उन्होंने राव साहब को छेड़ा, "यह क्या पहेलियां बुझा रहे हैं आप, साफ-साफ क्यों नहीं कहते !"

"मैं साफ-साफ ही तो कह रहा हूं, यह हजरत समझ क्यों नहीं रहे !" मैंने डॉक्टर राव के कथन को समझने से इंकार करते हुए उनकी ओर मूर्ख की तरह देखा।

पता नहीं क्यों, इसी समय सीमा उठकर कहीं चली गयी। डॉक्टर राव ने भाभी को छेड़ा, "कहो कैसा लगा तुम्हें हमारा चुनाव ? दीपा, तुम हमें बुद्धू समझती हो। लेकिन यह क्यों भूल जाती हो कि हमने तुम्हारा चुनाव भी पहली नजर में ही कर लिया था !"

भाभी ने आंखें ऊपर चढ़ाकर बनावटी गुस्से से कहा, "अब अपनी पसन्द के किस्से तो रहने ही दो ! वह तो कहो मैंने लिफ्ट दे दी, वर्ना यों ही रह जाते सारी जिन्दगी !"

डॉक्टर राव और भाभी के पारस्परिक वार्तालाप से बात मेरी समझ में आ गयी। उन दोनो ने इस तरह की बातें पहले की भी होंगी, सीमा के सामने, तभी तो वह फौरन उठकर दूसरे कमरे में चली गयी।

उस समय मेरी स्थिति विचित्र हो गयी। मुझे और सीमा को एक साथ जोड़ने का प्रसग उपस्थित हो गया था, लेकिन इससे पहले डॉक्टर साहब ने मुझे कोई सकेत तक नही दिया था।

मैंने डॉक्टर राव की परिस्थितियों पर गौर किया तो पाया कि सीमा के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेना उन्हें आवश्यक लगने लगा था। मुझे स्पष्ट ही यह आभास मिल गया कि मेरे सम्बन्ध मे डॉक्टर दम्पति ने सीमा से भी निर्णायक बातें कर ली हैं। अगर सीमा ने मेरे और मीनू के रागात्मक सम्बन्धों को जानने के बाद मेरे साथ जुड़ने से इकार कर दिया होता, तो डॉक्टर राव बात आगे न बढाते।

डॉक्टर राव ने मुझे सोच में डूबे देखकर कहा, "दीपा, आज मित्तल के यहां शादी है। थोड़ी देर के लिए उधर भी जाना पड़ेगा, चलने की तैयारी करो!"

"अच्छा जी! तो ठीक है, पहले चाय तो पी लो। मुझे तैयार होने में ज्यादा देर नही लगेगी···"

मैंने उठते हुए कहा, "ठीक है, आप लोग शादी अटेन्ड कीजिये, मैं भी चल रहा हू!" वातावरण में एक चुप्पी-सी ठहर गयी लगती थी।

डॉक्टर राव हड़बड़ाकर बोले, "ऐं, तुम किधर चले? तुम्हे कहां जाने की जल्दी पड़ रही है? हम लोग दो-ढाई घटे में तो लौट ही आएगे। बस एक प्रेजेन्ट देकर लौट आयेंगे। हम लोग वहा खाना खाने के लिए नहीं ठहरेंगे। तुम और सीमा तब तक गप्पें करो। हमारे साथ खाना खाकर ही जाओगे तुम!"

डॉक्टर राव की बातों से मुझे पक्का विश्वास हो गया कि वे मुझे और सीमा को बातें करने के लिए एकान्त देना चाहते हैं।

डॉक्टर दम्पति के चले जाने के बाद मैं कमरे मे अकेला ही रह गया। उन थोड़े-से एकान्तिक क्षणों में मुझे ऐसा लगा कि मुझे बांधने का सिल-सिला वहां बाकायदा शुरू हो चुका है। सीमा मेरे बारे में कोई कोमल भाव

सीमा को अपनी जकड़ से मुक्त करके कहा।

सीमा दो-तीन मिनट मुश्किल से बैठ पायी होगी कि डॉक्टर राव और दीपा भाभी आती दिखाई पड़ी। सीमा, "मैं अभी आती हूं" कहकर उठ गयी और कमरे से बाहर निकल गयी।

डॉक्टर कमरे में घुसे तो उन्होंने मेरा चेहरा ध्यान से देखकर कहा, "कहिये जनाब ! क्या अकेले बैठे बोर होते रहे इतनी देर तक ?"

"और आप किसलिए छोड़कर गये थे मुझे यहां ? कोई इधर झांकने तक तो आया नहीं !" मैंने हंसकर कहा।

दीपा भाभी हंसते हुए बोलीं, "एक नम्बर के झूठे हो ! अभी यहां से उठकर कौन गया है, कमरे के बाहर ?" उन्होंने सीमा को मेरे पास से उठकर जाते देख लिया था।

"कोई परछाईं-वरछाईं होगी, भाभी ! कभी-कभी आंखों को धोखा हो जाया करता है।"

"अच्छा, तो फिर तुम्हारी तकदीर ! मैं क्या कर सकती हूं, परछाइयों से ही बहलाओ अपने आप को !" भाभी भी दूसरी ओर जाते हुए बोलीं।

मैं भी वहां से उठा और बाहर लॉन की ओर निकल गया। मैंने देखा, सीमा वहां पहले से ही मौजूद है। लॉन में अनोखी शान्ति छायी हुई थी। पूरे चांद की रात थी और पेड़-पौधे दूध में नहाये हुए लग रहे थे। सब तरफ फैला हुआ मौन बहुत भला मालूम पड़ता था।

मैं थोड़ी देर तक स्थिर खड़ी सीमा को देखता रहा। मुझे अपनी पूरी देह में एक अनजानी कसमसाहट का अनुभव हुआ। हालांकि डॉक्टर राव ने मुझसे खाना खाकर जाने के लिए कहा था, लेकिन अपने मानसिक तनाव से आक्रान्त होने की वजह से मेरा व्यवहार सन्तुलित नहीं हो पा रहा था। मैंने उस रात वहां से चुपचाप चले आना ही उचित समझा।

जब मैं सीमा को वहीं छोड़कर चुपचाप आगे चल दिया तो वह पूछ बैठी, "कल किस टाइम आओगे ?"

"शाम को ही" कहकर मैं चल दिया। रास्ते भर सोचता रहा, क्या सभी लड़कियां एक-से ही शब्दों में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करती हैं ?

१६

इतवार को करीब दस बजे डॉक्टर राव ने एक आदमी भेजा जिसने एक लिफाफा मेरे हाथ में थमा दिया। मैंने लिफाफा फाड़कर कागज निकाला, उस पर डॉक्टर साहब ने अनगढ़ भाषा में चन्द पक्तियां घसीट रखी थी—
डियर अखिलेश !

आज एक छोटा-सा फंक्शन अरेंज किया है हमने। घर के ही लोग होंगे फकत। सारे चक्कर छोड़कर इधर आ जाना। और देर से मत आना, वर्ना कुछ भी हाथ नही आयेगा।

तुम्हारा अपना
विक्रमराव

मैंने सोचा, दीपा भाभी के स्वस्थ होने की खुशी मे सत्यनारायण की कथा वगैरह का कोई आयोजन होगा ! छुट्टी के दिन डॉक्टर राव घर मे ही रहते थे।

पर डॉक्टर राव के घर जाकर मैंने जो कुछ देखा, उसकी मैं कोई कल्पना नही कर सकता था। पिछले तीन-चार दिन में दीपा भाभी का भी और डॉक्टर राव ने जो फैसले किये थे, यह आयोजन उसी का प्रतिफल था। आंगन मे केले के पेड बांधकर एक मण्डप तैयार किया गया था और डॉक्टर राव के साले भी बीवी-बच्चों सहित वहां मौजूद थे।

मुझे देखते ही दीपा भाभी चहककर बोली, "लो आ गये देवर जी, कच्चे धागे मे बंधे हुए। आदमी अपनी गर्दन कितनी खुशी-खुशी फंसवाने आ जाता है—इसकी मिसाल मौजूद है !" फिर वे डॉक्टर राव की ओर मुंह करके बोली, "आप फरमाते थे कि उसे हवा भी लग गयी तो फुर्र हो जायेगा। मगर यहां तो चिड़िया खुद ही पिंजरे मे कैद होने चली आयी है !"

मैं उनकी इस पहेली का भी अर्थ नही समझ पाया। मैंने चकित होकर पूछा, "भाभी, आप ये सब क्या कह रही हैं ? आपने बाकायदा दावतनामा भेजकर मुझे तलब किया है, और अब आप एकदम उल्टी ही बात कह रही हैं !"

गहराई से अपने अन्तस में छिपाये हुए है। मुझे यह सोचकर उलझन-सी होने लगी कि मेरी कोमल भावनाओं को दूसरे लोग मुझसे कहीं ज्यादा समझ रहे हैं। चुपचुप किसी को भीतर-ही-भीतर चाहते रहने की बात अलग है, और उसका सब पर इस तरह प्रकट हो जाना अनायास अटपटापन पैदा कर जाता है।

जब मैं तरह-तरह के अजीब खयालों में डूब-उतरा रहा था तो सीमा कमरे में आयी और मुझे खोया देखकर बोली, "बहुत चुप बैठे हो, क्या सोच रहे हो? क्या किसी की बहुत याद सता रही है?"

"याद तो बहुत ही ज्यादा सता रही है। बोलो, क्या किया जाए?" मैंने और भी ज्यादा गम्भीर होकर कहा।

उसने नादानी से अपनी भोली आंखें उठाकर मेरा चेहरा देखा और पूछ बैठी, "आंखें इतनी थकी-थकी क्यों हैं, क्या सो नहीं रहे इन दिनों?"

उसकी बातों में मुझे बहुत रस आने लगा। मैंने उसे डराया, "नींद? नींद तो मेरी आंखों से हमेशा के लिए ही उड़ गयी, तुम बता सकती हो, अब कैसे आयेगी?"

"मुझे क्या मालूम! डॉक्टर साहब को बतलाओ वह कोई दवा दे देंगे!"

उसने जिस तरह अपनी बात कही, उसको सुनकर और ज्यादा देर गम्भीर रहना मेरे लिए असम्भव हो गया। मैं एकाएक हंस पड़ा और हंसी रुकने पर बोला, "तुम्हें मालूम है, मैं कई दिनों से तुमसे क्या बातें करना चाहता हूं?"

"बिना सुने कोई कैसे जान सकता है!" वह सिर झुकाकर बोली।

"ठीक! मगर डॉक्टर साहब और भाभी ने भी तो तुमसे कुछ बातें की होंगी।"

उसने टालते हुए कहा, "कौन-सी बातें? मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं क्या इतनी बड़ी हूं कि ये लोग मुझसे बातें करेंगे?"

"तो फिर यह फैसला उनका अपना ही है?"

मैं समझता था सीमा एकदम भोलेपन में बातें कर रही है, लेकिन जो कुछ उसने मेरी बात पर कहा, उससे मुझे लगा, वह पूरी तरह शरारत के

मूड में है। वह बोली, "उनका नहीं तो क्या मेरा फैसला है? क्या मैं उन लोगों से कुछ कहने जाती? कोई लड़की इस तरफ कदम बढ़ाती है, अपने आपसे?"

"क्यों नहीं बढ़ाती? मन में जोर होता है तो हजार बार कदम अपने आप आगे बढ़ते हैं।"

"अच्छा? फिर मीनू की क्या गलती है, आपके मन में जोर था तो कदम क्यों नही बढ़ाये एक बार पूरी ताकत से आगे की तरफ?"

"वह बात अलग है, मीनू की परिस्थितियां भिन्न थी," मैंने उस प्रसंग को अपने और सीमा के बीच लाने से बचने की कोशिश की।

मेरी बात पर सीमा गम्भीर होकर बोली, "क्यों नहीं! मीनू की परिस्थितियां तो अलग होंगी ही! मैं मीनू-जैसी हो भी कैसे सकती हूं? वह आपकी साथ बनकर रही और आपने उसे हमेशा एक सपने की तरह संजोकर रखा। मैं आपको सपना नहीं बल्कि जिन्दगी की एक सचाई बनाकर रखना चाहती हूं, तो आप महज भावनाओं तक ही सीमित रहना चाहते हैं।"

"तुम यह कैसे कह सकती हो? क्या तुम जानती हो सीमा, कि तुमसे ज्यादा मीठा सपना मेरे लिए कोई दूसरा नहीं हो सकता! वही सपना सचाई बन जाए, इससे बड़ी साध और हो भी क्या सकती है मेरी!" मैंने अपनी बात कहते-कहते उसका हाथ पकड़ लिया।

"रहने दो, इस तरह का खूबसूरत झूठ बोलकर मुझे बहलाने की कोशिश मत करो!" सीमा ने अपना हाथ छुड़ाकर भागने की कोशिश की तो मैंने हठात् उसके कंधे अपनी गिरफ्त में लेकर उसे आलिंगन में कस लिया और बोला, "मैं इतनी मुश्किल से हाथ आयी मंजिल को इस तरह नहीं निकल जाने दूंगा।"

एक पल मेरे से सटी सीमा चुपचाप खड़ी रही, और अगले क्षण शरारत से मुस्कराकर बोली, "फिर से सोच लो, कहीं यह भी तुम्हारी जिन्दगी का मोड़ ही न निकले, जिसे मंजिल समझने की भूल कर रहे हो!"

"बोलो मत कुछ! मेरे सामने चुपचाप बैठी रहो!" मैंने कसमसाती

"हां-हां, दावतनामा भेजा है, कौन इंकार कर रहा है ? चलो, सब ठीक है यहां भी !" कहकर डॉक्टर राव ने दीपा भाभी की ओर मुंह किया और एक आंख दबाकर बोले, "चलो, तुम अपना प्रोग्राम चालू करो।"

मैं डॉक्टर के साले इन्द्रदेवजी से बातें करने लगा और दीपा भाभी हम लोगों को छोड़कर अन्दर चली गयीं। करीब बीस मिनट बाद वह आयी और व्यस्तता दिखाते हुए बोली, "चलिये आप लोग, शास्त्रीजी आ गये हैं।"

मैंने सोचा, अब कथा वगैरह शुरू होनेवाली है, इसलिए इन्द्रदेवजी के साथ उठकर मण्डप की तरफ चला गया। शास्त्रीजी ने मुझे दरी पर बैठते देखकर कहा, "श्रीमानजी, आप वहां कहां बैठने लगे, इधर आकर बैठिये !"

मैंने सकोच जतलाते हुए कहा, "वह जगह घर के मुखिया के लिए है पंडितजी !"

इसी समय दीपा भाभी फिर एक क्षण को दिखाई पड़ी और बोलीं, "कोई बात नही है, तुम भी घर के मुखिया बनने जा रहे हो ! जहां शास्त्रीजी कहें, वही बैठ जाओ !" डॉक्टर राव दीपा भाभी की बात पर ठहाका लगाकर हंस पड़े।

दीपा भाभी फिर अन्दर के कमरे में चली गयी। वह लौटीं तो उनके साथ चादी के तारों से कढ़ी हुई लाल रंग की बनारसी साडी पहने हुए सीमा आती दिखायी पड़ी, वह दुल्हन के वेश मे थी। चन्नी भी नया कुर्ता गुलाबी रंग का सलवार पहने थी। मेरा सिर घूम गया, हे राम ! यह सब कितने अनोखे ढंग से होने जा रहा है !

कुछ महीने पहले तक मेरा डॉक्टर राव से परिचय तक नही था। मैं सोच भी नहीं सकता कि मैं अचानक किसी सीमा नाम की लड़की को अपनी वधू के रूप में देखूगा। मैं सोच के पखों पर उडते-उड़ते कल्पना-लोक मे विचरने लगा। मेरी देह मण्डप में ही थी, मगर मैं पता नही कहां चला गया था।...

इस अवसर पर लड़की के माता-पिता के सारे कर्तव्य डॉक्टर राव और दीपा भाभी ने ही पूरे किये। लगभग डेढ़-दो घंटे में स[illegible] कताएं सम्पन्न हो गयीं। यह सब इतने आकस्मिक

अपने मित्रों-परिचितों तक को कोई सूचना नही दे सका।

उसी शाम मैं सीमा को अपने कमरे में ले जाने को तैयार हो गया। दीपा भाभी और डॉक्टर राव ने मेरे और सीमा के इस निर्णय को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया, लेकिन भाभी ने हल्का-सा अनुरोध भी किया, "यहीं रह लेने में क्या हर्ज था! पर हां, दोनों को इतना अकेलापन शायद यहां न मिले कि···" और यह कहकर वे मुस्करा दीं।

मैंने भी दुष्टता से कहा, "हां-हां, यहां इतना अकेलापन क्यों होगा! अच्छा भाभी, जरा यह भी बताना कि आपको भी अकेलेपन की जरूरत पड़ी थी या नहीं?"

इस पर सीमा ने अपनी मुस्कराती रतनारी आखों से मेरी ओर देखा और मुंह दूसरी ओर घुमा लिया। मैंने भाभी का चेहरा देखा वह अत्यन्त उत्साहित और उल्लसित दीख पड़ती थी। गम्भीर होते हुए बोलीं, "कल सीमा को लेकर यहीं आ जाना।"

इसके बाद वह डॉक्टर राव को सम्बोधित करके कहने लगीं, "आप गाड़ी निकालकर इन दोनों को छोड़ आइये। बेचारे एकान्त के लिए बहुत बेचैन लग रहे हैं।"

"एकान्त की कमी तो भाभी इस इतनी बड़ी कोठी में भी नहीं है, लेकिन···" मेरी सफाई को भाभी ने हवा में हथेली घुमाकर काट दिया, "अरे छोड़ो भी लेकिन-फेकिन! हम क्या इन बातों को जानते नहीं हैं कि शादी होने के बाद मियां-बीवी एक सेकेंड को भी तीसरे किसी को पास नहीं देखना चाहते।"

"ठीक है जी, तो मैं इन्हें होटल स्काई लार्क में डिपॉजिट कर आता हूं। पूरे सूट में हफ्ते भर दोनों बन्द पड़े रहेंगे।" कहकर डॉक्टर राव ने मुझे चलने का संकेत किया।

मैंने डॉक्टर राव को रोकते हुए कहा, "नो गाड़ी, नो होटल! सड़क पर रिक्शों की कोई कमी नहीं है। सीमा को मेरी दुनिया भी तो देखने दीजिये, अपनी आंखों से!" अपनी बात कहकर मैंने सीमा की आंखों में देखा। लेकिन सीमा इस समय शायद कुछ भी नहीं सुन पा रही थी।

उसके मुखपर नववधू का अप्रतिम सौन्दर्य और आंखो में सपनों का ज्वार उमड़ रहा था।

सहसा भाभी आगे बढ़ीं और उन्होंने अपने गले से जड़ाऊ हार निकालकर सीमा के सिर से जरा-सी साड़ी खिसकाकर उसके कण्ठ में पहना दिया। साथ ही उन्होंने सीमा को अपने वक्ष मे समेटकर कहा, "अच्छा रानी जाओ, अपना ससार देखो !"

चन्नी दीपा भाभी के पीछे चुपचाप खड़ी थी। मैं चलने को हुआ तो मैंने कहा, "आओ चन्नी !"

"मेरी यह लाड़ो अब तुम्हारे साथ क्यों जायेगी ?" कहते-कहते दीपा भाभी की आखो मे अनायास आसुओं का सैलाव उमड़ पड़ा। सहसा सीमा की आंखों से भी आसू गिरने लगे तो डॉक्टर राव अपनी जेबों में कुछ तलाश करने लगे। मैं समझ गया, वे भावुकता के क्षणों मे ऐसा ही करने लगते हैं। शायद वे अपनी जेब मे सिगरेट का पैकेट तलाश करने लगे थे।

सीमा ने मुझसे अलग हटकर चन्नी को आलिंगन में ले लिया और रुंधे कण्ठ से बोली, "भाभी-मा के सग खुश रहना, मैं कल आ जाऊंगी।"

हम दोनों चले तो सब लोग हमें दरवाजे तक छोड़ने आये। मैंने हाथ जोड़कर सबको नमस्कार किया, और झुककर डॉक्टर राव और दीपा भाभी के पांव छुए। सीमा भी यही कुछ करने लगी तो डॉक्टर साहब ने उसे कधों से पकड़कर उठाते हुए कहा, "अरे पगली, तू यह क्या करने लगी ?"

"विश यू ए हैप्पी कन्जुगल लाइफ ! (मैं तुम्हारे सुखी दाम्पत्य की कामना करता हूं !)"—कहकर डॉक्टर राव ने मेरा कंधा थपथपाया और बोले, "ऑल राइट, कल आ जाना सिनेमा देखने चलेंगे सब लोग !"

जब मैं और सीमा डॉक्टर राव की कोठी से बाहर निकले तो तीसरे पहर की धूप ढल चुकी थी। डॉक्टर राव, दीपा भाभी, चन्नी और इन्द्रदेव द्वार पर खड़े हम दोनों को सड़क पर जाते देखते रहे।

सामने से आते रिक्शा को रोककर मैंने कहा, "सीमा, चलो बैठो !" सीमा रिक्शे पर बैठ गयी तो मैं उसकी बगल में जा बैठा और रिक्शेवाले

से बोला, "चलो, सुरदेवेश्वर मन्दिर चलो !"

सीमा ने अपनी आंखों को तिरछा करके मेरी ओर प्रश्नात्मक मुद्रा से देखा। मैंने मुस्कराकर कहा, "सुरदेवेश्वर शिव का अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। मेरे-जैसे अनगढ़-अनाड़ी को तुम्हारे-जैसी गौरांगना यों अनायास मिल गयी, इसके लिए महादेव को धन्यवाद तो दे आऊं चलकर !"

सीमा हंसकर बोली, "आप तो उल्टी बात कह रहे हैं ! पार्वती को शिव ने नहीं खोजा था, बल्कि पार्वती ने शिव के लिए तपस्या की थी।"

"अच्छा तो यही सही ! मुझे तुम्हारी खोज बन जाने में भी सुख ही है !"

सीमा कुछ बोलती कि इसी समय रिक्शेवाले ने मुड़कर हम दोनों को देखा और बोला, "मेमजी, साड़ी को ध्यान रखियो, पहियन में न जाय फंसे कहूं..."

सीमा ने उस भारी-भरकम, इधर-उधर फिसलती साड़ी को मुट्ठियों में समेटने का प्रयत्न किया और मेरे कन्धे से लगकर बैठ गयी।

□□

से० रा० यात्री

जन्म : 1933, अगस्त, मुजफ्फरनगर

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी साहित्य) (राजनीति शास्त्र)

सृजन : गत पच्चीस वर्षों से निरन्तर रचनात्मक लेखन में सक्रिय। हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में कहानियां एवं उपन्यास प्रकाशित होकर चर्चित होते रहे हैं। साठोत्तरी लेखन मे शीर्षस्थ स्थान। अनेक रचनाओं का भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी मे अनुवाद हो चुका है। निम्न मध्यवर्ग की त्रासदी का विशद विवेचन लेखन का मेरुदण्ड है।

सम्प्रति : एम० एम० एच० बी० ई० कालेज गाजियाबाद में हिन्दी अध्यापक।